हिन्दी काव्य की कलामयी तारिकाएँ

लेखक—

श्री व्यथित हृदय

भूमिका लेखक—

श्रीयुत रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
एम० ए० डी० लिट्

प्रकाशक—

प्रमोद पुस्तक माला कटरा, प्रयाग

प्रथम संस्करण } जनवरी १९४१ { मूल्य
११०० } { २॥)

प्रकाशक—

पं० करुणाशंकर शुक्ल,

प्रोप्राइटर—प्रमोद, पुस्तकमाला,

कटरा, प्रयाग।

(सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन)

मुद्रक—

पं० करुणाशंकर शुक्ल

प्रमोद प्रेस, कटरा, इलाहाबाद

प्राक्कथन

हिन्दी-साहित्य के इतिहास से यह स्पष्ट है कि पुरुषो की भाति हमारी देवियों ने भी साहित्य के निर्माण का पुनीत और प्रशसनीय कार्य बडी सहृदयता और रुचिरता के साथ किया है। हिन्दी साहित्य के प्रारभिक अथवा प्रथम काल मे तो कदाचित पुरुषो को इस कार्य मे देवियो का सहयोग न प्राप्त हो सका था और हो भी न सकता था क्योकि उस काल में देश और समाज की दशा ही कुछ दूसरी थी। वह युग था वीर-काव्य का, देश के वीरो का यशोगान करके नवयुवकों मे वीरोचित भाव-भावनाओ के जागृत करने तथा देश-समाज और धर्म की स्वतत्रता के लिये प्राणोत्सर्ग करने के लिये उन्हे प्रोत्साहित करने की ही आवश्यकता उस समय थी। इसमे स्त्रियाँ कोई विशेष भाग न ले सकी, यद्यपि वे ले सकती थीं और उन्हे लेना भी चाहिये था क्योंकि वीरांगनाये ही वीर प्रसवा पूतनामा माताये होती है और उन्ही से समाज में शूर वीर, त्यागी और देशानुरागी युवक उत्पन्न होकर स्मरणीय कार्य करते हैं। किंतु हमारे साहित्य के इतिहास में ऐसी वीर-भाव-भावना भूषिता तथा वीर काव्य-लेखिकाओं का कोई विशेष उल्लेख नहीं। हो सकता है कि उनकी रचनायें हमें अब तक उपलब्ध न हो सकी हों यह विषय हमारे लिये

खोज का ही विषय है। जब तक खोज से हमे इस विषय का पूरा परिचय नही प्राप्त हो सकता तब तक तो यही कहा जा सकता है कि उस काल मे स्त्रियो ने इस ओर ध्यान न दिया था।

द्वितीय या धार्मिक काल मे स्त्रियो ने साहित्य-रचना का कार्य प्रारम्भ किया। यह काल था भी ऐसा कि स्त्रिया साहित्य के क्षेत्र मे प्रविष्ट हो सकती थीं। इस समय मे देश और समाज की अवस्था भी इसके लिये सर्वथा अनुकूल थी।

साथ ही इस काल साहित्य या काव्य की जो प्रगति रही, जैसी शैली और भाव-भावना-धारा चली वह सब भी स्त्रियो की मनोवृत्ति तथा प्रकृति के अनुकूल रही। यही कारण है कि स्त्रियों ने इस काल की काव्य-शैली तथा विचारधारा को विशेष रूप मे अपनाया है। उस काल मे इसीलिये स्त्रियों ने साहित्य रचना-क्षेत्र मे पुरुषों के साथ पूरा भाग लिया और बराबर धार्मिक-काव्य की परम्परा को आगे बढाती रहीं हैं।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि स्त्रियों मे पुरुषो की अपेक्षा अधिक सबल भावना शक्ति, भावानुभूति क्षमता तथा सरल और कोमल मनोवृत्ति रहती है। उनम रागात्मक वृत्ति विशेष रूप से प्रबल और प्रधान होती है। इसलिये उन पर ऐसे ही साहित्य या काव्य का अधिक गहरा प्रभाव पडता है जो रसात्मक होकर हृदय से ही सम्बन्ध रखता हो। जिसमे सरसता और सहृदयता की पूरी छाप हो। धार्मिक काल में ऐसे

कृष्ण की ही ललित लीलाये मुक्तक काव्य के रूप मे चातुर्य-माधुर्य तथा रुचिर रोचकता के साथ चित्रित की जाती रही हैं। अतएव इस काल मे भी स्त्रियों ने अपने अनुकूल विचार-धारा तथा रचना-शैली पाकर स्तुत्य कार्य किया है। यद्यपि उन्होंने पुरुषो के समान काव्य-कौशल का प्रचुर प्रतिभा पूर्ण तथा बुद्ध्यात्मक चाद चातुर्यमय काव्य नही लिखा फिर भी इस क्षेत्र मे भी व बहुत पीछे नहीं रही। चन्द्रकला बाई जैसी कवियित्रियो ने इस क्षेत्र मे सराहनीय कार्य किया है। इसी काल मे उत्तर भाग मे विशेष रूप से प्रचलित होने वाली समस्या पूर्ति की कला के प्रवर्धन मे भी स्त्रियो ने अच्छा सहयोग किया है। इस कला के भी क्षेत्र मे उन्होने अपनी प्रतिभा-पटुता का पर्याप्त परिचय दिया है। हाँ यह बात अवश्यमेव हुई है कि इसी काल से कवियित्रियों की सख्या मे कुछ न्यूनता तथा उनकी साहित्य-सेवा मे कुछ शिथिलता सी आ चली है और आधुनिक युग के पूर्व काल मे स्त्रियो की साहित्य सेवा स्थगित हो गई थी, एक प्रकार से उसका लोप ही सा हो गया था।

आधुनिक युग के इस वर्तमान काल मे फिर स्त्रियो ने साहित्य रचना-क्षेत्र मे सराहनीय साहस और उन्नत उमगोत्साह के साथ कार्य करना प्रारम्भ किया। खड़ी बोली के गद्य साहित्य के प्रवर्धन मे तो उनका इतना अच्छा भाग नहीं किन्तु खडी बोली के काव्य-क्षेत्र मे उनका रचना कार्य यथेष्ट और अच्छा

शीघ्र ही प्रकाशित होगी—

'महादेवी वर्मा'

वर्तमान हिन्दी का काव्य साहित्य महादेवी जी की प्राजल श्री विभूत से आभूषित है। इस पुस्तक मे उन्ही के काव्य का विशद विवेचन है। इसके लेखक श्री गगाप्रसाद जी पाण्डे तथा श्री सतकुमार जी वर्मा है। वर्तमान काव्य के आलोचको मे पाण्डे जी का नाम अपरिचित नही, इस पुस्तक मे आलोचक द्वय ने महादेवी जी की कविताओ का उनकी कृतियो के क्रम से पाठको के लिये एक बहुत ही उत्तरदाइत्व पूर्ण अध्ययन उपस्थित किया है। अपने आलोचक जीवन के उस काल से ही पाण्डे जी ने महादेवी जी पर पाठको को जो सामग्री दी है उसके विचार से इस पुस्तक की उपादेयता अत्यन्त बढ़ जाती है। पुस्तक मे, महादेवी जी की कृतियो, भावनाओं तथा उनकी काव्य विशेषताओ का एव काव्य की सहज प्रवृत्ति प्रेरणाओं का मार्मिक निदर्शन है। महादेवी जी पर यह पहिली पुस्तक है, उनके पाठको की सुबोधता मे इस पुस्तक की सहायता निस्सन्देह सोपान का काम करेगी।

———

हुआ है, सुभद्रा कुमारी चौहान, लली जी, नलिनी जी और महादेवी वर्मा का रचना-कार्य सर्वथा स्तुत्य हुआ है। इन प्रमुख कवियित्रियों के साथ ही चकोरी और कोकिल जैसी कतिपय कवियित्रियाँ अब भी प्रशसनीय रचना-कार्य कर रही है। आशा है कि ऐसी ही तथा इनमे भी बढ कर रचनाये करने वाली देविया साहित्य-क्षेत्र मे आकर भारती का भडार भरेगी।

प्रस्तुत सग्रह स्त्रियों के द्वारा रचे गये साहित्योद्यान से बडी सहृदयता तथा भावुकता के साथ चुने गये सुन्दर प्रसूनो का हृदयहारी हार ही है। इसमे मीरा बाई से लेकर वर्तमान समय की प्रमुख कवियित्रियों तक की सुन्दर रचनाये एक चतुर आलोचक तथा कवि हृदय रखने वाले सुयोग्य सग्रहकार के द्वारा सकलित की गई है। यद्यपि इस पुस्तक से पूर्व श्री निर्मल जी के द्वारा स्त्री कवि कौमुदी के नाम से एक सुन्दर सग्रह हिन्दी ससार मे आ चुका था और कुछ अन्य लेखकों के द्वारा भी ऐसी ही कुछ अन्य पुस्तके भी उपस्थित की जा चुकी थीं किन्तु उन सब मे आलोचनात्मक अश की कमी थी जिसकी पूर्ति का प्रयत्न इस सग्रह मे किया गया है। यद्यपि प्रत्येक कवियित्री की रचनाओ पर पूर्ण रूप से आलोचनात्मक प्रकाश इसमे भी नहीं डाला गया फिर भी साधारण जनता तथा विद्यार्थियो के लिये पर्याप्त प्रकाश फेका गया है। हम इस सुन्दर सग्रह के लिये सम्पादक या सग्रहकार को हार्दिक बधाई और साधुवाद देते हैं।

विद्वजन कृपाकांक्षी
रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल"
एम० ए० डी० लिट्०

प्रयाग विश्वविद्यालय
१९—१२—४०

ही काव्य की परम्परा उठी और आगे बढी। विशेषतया कृष्ण-काव्य की भव्य-भाव भावनाभरी शाखा मे यह गुण पाया जाता था इसीलिये स्त्रियों ने इसी शाखा को विशेष रूप से अपनाया है और अधिकतर कृष्ण-काव्य ही रचा है। इस काव्य-क्षेत्र मे पद-शैली की रुचिर रचना का जो प्रचुर प्रचार रहा और गीत-काव्य की रोचक रचना-रीति का जो प्राबल्य रहा उससे स्वभावत' स्त्री समाज अधिक समाकृष्ट हुआ। और इसी का उसने अनुसरण भी अपेक्षा कृत अत्यधिक किया। राम-काव्य, नीति-काव्य तथा कला-काव्य की ओर उनका ध्यान इतना अधिक आकृष्ट नहीं हो सका। इन क्षेत्रों मे भी व्यक्तियो ने कार्य किया अवश्यमेव है, किन्तु उतना नहीं जितना कृष्ण-काव्य के क्षेत्र मे। कृष्ण काव्य मे कृष्ण का परम सुन्दर और सरस रूप ही लिया गया है, वे परम मनोहर बालक और परम प्रेमी तथा शीलवान नायक के ही रूप मे विशेपत या चित्रित किये गये है। उनका प्रेम यद्यिप लौकिक होता हुआ अलौकिक रहा है। साथ ही अन्य भावों के साथ कृष्ण-भक्ति मे दाम्पत्य अथवा माधुर्य भाव की तथा वात्सल्य भाव की ही विशेषता रही है। यही सब ऐसे प्रमुख कारण हैं जिन्होंने हमारी बहुत सी देवियों को कृष्ण-काव्य की ओर समाकृष्ट कर उन्हे उसकी ही सुधा धार मे निमग्न कर रक्खा था।

रीतिकाल मे भी काव्य कला-कौशल के अन्तस्तल में कृष्ण-भक्ति नाविल सन्निहित रही है। राधा कृष्ण तथा गोपी

प्राक्कथन

हिन्दी-साहित्य के इतिहास से यह स्पष्ट है कि पुरुषो की भाति हमारी देवियों ने भी साहित्य के निर्माण का पुनीत और प्रशसनीय कार्य बडी सहृदयता और रुचिरता के साथ किया है। हिन्दी साहित्य के प्रारभिक अथवा प्रथम काल मे तो कदाचित पुरुषो को इस कार्य मे देवियो का सहयोग न प्राप्त हो सका था और हो भी न सकता था क्योकि उस काल में देश और समाज की दशा ही कुछ दूसरी थी। वह युग था वीर-काव्य का, देश के वीरो का यशोगान करके नवयुवकों मे वीरोचित भाव-भावनाओ के जागृत करने तथा देश-समाज और धर्म की स्वतत्रता के लिये प्राणोत्सर्ग करने के लिये उन्हे प्रोत्साहित करने की ही आवश्यकता उस समय थी। इसमे स्त्रियाँ कोई विशेष भाग न ले सकीं, यद्यपि व ले सकती थीं और उन्हे लेना भी चाहिये था क्योंकि वीरांगनायें ही वीर प्रसवा पूतनामा माताये होती है और उन्हीं से समाज में शूर वीर, त्यागी और देशानुरागी युवक उत्पन्न होकर स्मरणीय कार्य करते हैं। किंतु हमारे साहित्य के इतिहास में ऐसी वीर-भाव-भावना भूषिता तथा वीर काव्य-लेखिकाओं का कोई विशेष उल्लेख नहीं। हो सकता है कि उनकी रचनायें हमें अब तक उपलब्ध न हो सकी हों यह विषय हमारे लिये

शीघ्र ही प्रकाशित होगी—

'महादेवी वर्मा'

वर्तमान हिन्दी का काव्य साहित्य महादेवी जी की प्राजल श्री विभूत से आभूषित है। इस पुस्तक मे उन्ही के क व्य का विशद विवेचन है। इसके लेखक श्री गगाप्रसाद जी पाण्डे तथा श्री सतकुमार जी वर्मा है। वर्तमान काव्य के आलोचको मे पाण्डे जी का नाम अपरिचित नही, इस पुस्तक मे आलोचक द्वय ने महादेवी जी की कविताओ का उनकी कृतियो के क्रम से पाठको के लिये एक बहुत ही उत्तरदाइत्व पूर्ण अध्ययन उपस्थित किया है। अपने आलोचक जीवन के उस काल से ही पाण्डे जी ने महादेवी जी पर पाठको को जो सामग्री दी है उसके विचार से इस पुस्तक की उपादेयता अत्यन्त बढ़ जाती है। पुस्तक मे, महादेवी जी की कृतियो, भावनाओं तथा उनकी काव्य विशेषताओ का एव काव्य की सहज प्रवृत्ति प्रेरणाओं का मार्मिक निदर्शन है। महादेवी जी पर यह पहिली पुस्तक है, उनके पाठको की सुबोधता मे इस पुस्तक की सहायता निस्सन्देह सोपान का काम करेगी।

———

सस्नेह

विषय-सूची



मीराबाई

मीराबाई

हिन्दी-जगत मे अनेक कवियो ने भक्ति और ईश्वर-प्रेम मे पीडित होकर गाया है। तुलसी, सूर, कबीर, इत्यादि सभी न. और सभी ने अपने प्रेम-ससार को भावों की वीणा से गुंजित करते हये अन्तर के परदो को भी खोल देने का प्रयत्न किया है। किन्तु मारा की सी विरह-झकार किसी की वीणा से भी निकलती हुई नहीं सुनाई देती। मीरा के विरह-गीत सच्चे विरह के गीत हैं। उन्होंने जो कुछ गाया है, हृदय और प्राणों के साथ गाया है। उनके शब्द-शब्द मे उनके हृदय की कसक है, उनके प्राणों की आकुलता है। उनकी कसक और उनकी वदना, इतनी आगे बढ़ गई है कि वह मूर्ति मान सी हो उठी है। यदि उसके प्रवाह ग [illegible] हृदय मे मानवी भावनाओ को बटोर कर कान लगा कर सुनिय तो मीरा के पदो मे मीरा के घुँघुरू बजते हुये सुनाई देते हैं। व घुँघरू बजते हुये सुनाई देते हैं, जो मीरा की भाँति गम का आसव पीकर स्वय भी विरह के गीत बिखेरते रहते हैं। मीरा की यह एक अपनी विशेषता है। इस विशेषता ने हिन्दी-[illegible]

मे ही नहीं, विश्व-साहित्य मे भी मीरा को अमर बना दिया है। मीरा की सी प्रेम-साधिका और वियोग-गायिका कदाचित् ही ससार के किसी साहित्य मे उपलब्ध हो सके। वह प्रेम, वह वियोग, वह आकुलता और वह तल्लीनता ! मीरा के पदो को छोड कर उसका और कहाँ दर्शन हो सकता है ?

मीरा के गीति काव्य उनके विरह के गीति-काव्य हैं, उनकी अपनी वियोग-वेदना के सजीव चित्र है। उन्होंने अपने पदो मे अपने जिस प्रियतम का आह्वान किया है, वास्तव मे उसके लिये उनका हृदय छटपटाता रहता था। वे उस से मिलने के लिये प्रचण्ड आँधी से भी अधिक गतिवान और समुद्र से भी अधिक गभीर थीं। अत्याचारो की अग्नि मे जलती थी, कष्टो और यत्रणाओ की झाडियो मे हसतीं-मुस्कराती हुई पैर बढाती थीं, किन्तु प्रियतम के नाम को क्षणभर के लिये भी अपने ओठो से न विलग करती थी। प्रियतम के प्रेम और उसके अभाव ने उन्हे स्वय प्रेम और वेदना मय बना दिया था। उनके पच भूतात्मक शरीर से वे नहीं बोलती थी, बल्कि बोलता था, उनका प्रेम, उनकी वेदना और उनका विरह। वे दिन रात चारों ओर प्रेम मे मतवाली बन कर विरह के गीत छिटकारती फिरती थी। ऐसे गीत छिटकारती फिरती थी, जिनमे कि उनका हृदय बोलता था, उनके प्राण झकृत होते थे।

मीरा के इस प्रेम-विरह मे एक बहुत बडी विशेषता है, और यही विशेषता उनके वास्तविक प्रेम का वास्तविक चित्र भी

खीचती है। मीरा का हृदय प्रियतम के वियोग से व्याकुल तो है, किन्तु उसमे शोक और विषाद के लिये स्थान नही। मीरा अपने प्रियतम के विरह मे उदास और निराश न होकर उन्माद के आनन्द म नाचती और गाती है। दूसरे शब्दों मे यह कहना चाहिये, कि वियोग की वेदना ने उन्हे इतना अधिक वेदना शील बना दिया है, कि वे मतवाली बन गई हैं, और उनकी सारी वियोग-वेदना आनन्द के रूप मे परिणत हो उठी है। मीरा जब इस 'आनन्द' को लेकर आगे चलती हैं, तब वे फिर किसी की चिन्ता नहीं करती। वे इसी आनन्द के उन्माद मे राज-प्रासाद को छोड देती हैं, विष का प्याला ओठो से लगा लेती है, और डाल लेती हैं, सर्पो की गले मे माला। वास्तव मे बात तो यह थी, कि वहाँ मीरा का अस्तित्त्व ही नही था। वे आनन्द मे इतना विभोर हो उठी थी, कि उन्हे अस्तित्त्व का ज्ञान ही नही था। वे एक पगली के सदृश थीं। उन्हे न अपनी चिन्ता थी, और न ससार की। ससार की सीमाओ और शृ खलाओ का उनकी दृष्टि मे कुछ भी मूल्य नहीं था। वे सब को तोड कर अपने प्रियतम के पास जाना चाहती थीं। प्रियतम की लौ उनके हृदय मे इस प्रकार समाई हुई थी, कि उसके समक्ष उन्हे ससार मे कुछ दिखाई ही नही देता था। मीरा की इस एकाग्रता का चित्र उनके इस पद मे देखिये।

आली रे मेरे नैनन बान पडी।
चित्त चढी मेरे माधुरी मूरति उर बिच आन गडी।
कब की ठाढी पन्थ निहारूँ, अपने भवन खडी॥

कैसे प्रान पिया बिनु राखूँ, जीवन-मूल जडी ।
मीरा गिरिधर हाथ बिकानी लोग कहैं बिगडी ॥

मीरा के प्रियतम थे, वही गिरिधर, जो साकार होते हुए भी निराकार थे, जो अगों से सयुक्त होने पर भी निरांग थे। मीरा अपने उन्हीं गिरिधर को खोजती थीं, और उन्हीं के वियोग मे विरह के गीतों को छिटकारती थीं। वे ज्यो ज्यों प्रेम के पथ पर आगे बढती थीं, त्यों त्यों उनकी प्यास भी अधिक बढती जाती थी। प्यास इस लिए अधिक बढती जाती थी, कि उनकी आँखे जिसे देखना चाहती थीं, वह उन्हे नही दिखाई देता था। वह उनकी आँखों के सामने अपनी एक स्वर्णच्छवि बिखेर कर उनसे दूर खिसकता जा रहा था, और मीरा उसकी उस स्वर्णच्छवि पर विमुग्ध होकर हाथ फैलाये हुये उसकी ओर खिंची जा रही थीं। मीरा की वह अवस्था एक वियोगिनी मतवाली साधिका की अवस्था थी। मीरा ने अपनी इस अवस्था मे प्रेम को सीमित कर दिया है, वियोग का अन्त कर दिया है। अपनी इस अवस्था मे मीरा जब प्रेम और वियोग से लसी हुई आविर्भूत होती है, तब विवश होकर यह कहना पडता है, कि मीरा के इस प्रेम और वियोग के पश्चात् कदाचित् कुछ नहीं है। मीरा ने प्रेम और वियोग के अन्तिम तट पर से ही अपने प्रियतम का आह्वान किया है, और आह्वान करते करते वे आनन्द तथा उन्माद की प्रतिमूर्ति बन गई हैं। मीरा ने अपने इसी वियोगानन्द मे अपने गीतो

की सृष्टि की है। इसी लिये तो उनके गीतों मे उनका हृदय बोलता है, उनके प्राण झंकृत होते है, और इसी लिये मीरा विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि भी बन सकी है।

मीरा भक्त थी। गिरिधर गोपाल उनके आराध्य देव थे। उन्होंने अपना तन-मन धन सब कुछ उन्हीं के नाम पर निछावर कर दिया था। यह सच है, कि मीरा के गिरिधर कभी व्रज की गोपियो के साकार और मनुष्य रूप मे नायक थे, किन्तु मीरा का गिरिधर साकार होते हुये भी निराकार है, सीमित होते हुये भी असीम है। मीरा को अपने गिरिधर मे एक ऐसी ज्योति और एक ऐसा अखण्ड सौन्दर्य दिखाई देता है, जो इस ससार के बाहर एक किसी दूसरे ससार की वस्तु है। मीरा इस नश्वर जगत मे अपने प्रियतम के उस सौन्दर्य के स्थायित्व को समझती है, और उस पर वे अपने को लुटा देती हैं। उस सौन्दर्य के आगे मीरा को इस नश्वर जगत मे कुछ दिखाई ही नहीं देता। मीरा वियोगिनी है, विरहिणी हैं, किन्तु फिर भी वे आनन्द मे उन्मत्त बनकर गाती हैं। गाती हैं, इस लिये, कि वे उस प्रियतम की विरहिणी है, जो असीम है, अनन्त है, अलक्ष्य है, और अप्राप्य है। मीरा को अपने इस प्रियतम की विरहिणी होने पर गर्व है। देखिये, वे किस प्रकार आनन्द से पुलकित होकर कह रही है :—

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो।

यहाँ मीरा के विरह मे ज्ञान है, एक गभीर दार्शनिकता

है। यहाँ वे ससार की सीभा पर खडी होकर ससार को ललकारती हुई दिखाई देती है। ससार उनकी प्रेम मयी आँखों के लिये तुच्छ है, और तुच्छ है, ससार की विलास-वस्तुये। मीरा अपने उस प्रियतम के लिये, जिसकी ज्योति से सारा ससार आलोकित है, सब को ठुकरा देती है। मीरा इस बात को जानती है, कि उनका प्रियतम 'अलद्दय' है, 'अदृश्य है' किन्तु फिर भी वे गिरिधर के रूप मे उसे ढूँढती है। कभी २ मीरा ढूँढते-ढूँढते थक भी जाती है, और उनके विरह व्यथित हृदय से निकल पडता है .—

हेरी मै तो प्रेम दीवाणी, मेरा दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोणा होय॥

किन्तु फिर भी मीरा निराश नहीं होती। उन्हे पूर्ण आशा है, कि उनका प्रियतम उन्हे अवश्य मिलेगा और वे उसी आशा के उन्माद मे प्रेम-पथ पर दौडती हुई दिखाई देती है। मीरा इस दौड मे अपने प्रियतम के अग-सौन्दर्य पर नहीं रीझतीं। इसी लिये तो मीरा ने अपने पदो मे कही भी अपने प्रियतम के अग-सौन्दर्य की चर्चा नहीं की है। सूर ने कृष्ण के बाल रूप पर विमुग्ध होकर उनके अग-सौन्दर्य का वर्णन किया है। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी भी श्रीराम चन्द्र जी के अग-सौन्दर्य पर बार-बार अपने को निछावर करते हुये दिखाई देते है, किन्तु विरहिणी मीरा के लिये यह सब कुछ नहीं था। मीरा तो अपने गिरिधर के उस सौन्दर्य पर

रीझी हुई थीं, जो अविनश्वर था, और जिसे वे ससार की प्रत्येक वस्तु मे ज्योति के रूप मे झलकती हुई देखती थीं। मीरा अपने प्रियतम के इसी सौन्दर्य की उपासिका थीं। इस 'सत्य' 'सौन्दर्य' ने मीरा को इतना विमुग्ध कर लिया था, कि ससार के चारों ओर उसी का व्यापक रूप मीरा को दिखाई देता था। जगलों मे, पहाडो पर, बादलों मे, ऋतुओं मे, सर्वत्र मीरा को अपने प्रियतम की ही ज्योति दिखाई देती थी। मीरा की प्रेम मयी आँखो ने वास्तव मे उस ज्योति के रहस्य को समझ लिया था, जिसे समझने के लिये लोग तपश्चर्या की अगि मे अपने जीवन की आहुति देते है। मीरा के प्राणो ने भली प्रकार यह अनुभव कर लिया था, कि इस 'सत्य' और सौन्दर्य के आगे ससार मे कुछ नहीं है। नश्वर जगत मे यदि किसी की कुछ सत्ता है, तो यही है। इसी लिये मीरा सारे जगत की उपेक्षा करके कटक-पूर्ण पथ पर भी हँस कर दौडती हुई दिखाई देती हैं, और इस प्रकार दौडती हुई दिखाई देती है कि उनकी प्रगति मे ससार की कोई भी शक्ति बाधा नहीं उपस्थित कर सकती। मीरा स्वय कहती है—

"मेरा कोई नाही रोकन हार, मगन होय मीरा चली।"

मीरा ज्ञानी है, दार्शनिक है, और रहस्य वादिनी। मीरा के पदो मे जिस ज्ञान, जिस दर्शन और जिस रहस्य बाद का प्रास्फुटन हुआ है, वह कबीर को छोड कर अन्य किसी भक्त कवि की कविताओं मे नहीं पाया जाता। मीरा

इस माग पर बडे बडे भक्त कवियो को भी बहुत पीछे छोड गई हैं। मीरा का रहस्यवाद इसलिये और भी अधिक महत्त्व-पूर्ण हो गया है, कि उसमे विरह है, पीडा है, और साथ ही साथ प्राणों की सगीत है। मीरा न पीडित होकर जहाँ दार्शनिक की भाँति टेर लगाई है, वहाँ एक सच्चे रहस्यवाद का स्वरूप खडा हो गया है। वहीं इस बात का भी प्रमुख रूप से पता चल जाता है, कि मीरा की पीर ससार के बाहर की पीर थी। उनकी वेदना वह वेदना थी, जिसकी ससार मे कोई औषधि ही नहीं। मीरा अपनी इस पीर के बारे मे स्वय कहती हैं —

दरद की मारी बन बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटै, जब वैद सँवलिया होय ॥

मीरा अपनी दार्शनिक व्यथा को प्रगट करने के लिये भाषा और शब्दों क पीछे नही दौड़ती थी। भावो मे सौन्दर्य उत्पन्न करन के लिए उन्हे कला को भी खोज नहीं थी। प्रेम और विरह से परिपूर्ण मीरा के हृदय मे शब्द, भाषा लालित्य और कला के लिये स्थान ही नही था। वे अपने पीडित और विरही हृदय को बिलकुल ठीक ठीक सीधे-सादे शब्दों के साँचे मे ढालती थीं, और इस प्रकार ढालती थीं, कि एक-एक शब्द प्रेम का तार बन कर बजने लगता था, और इस समय भी वही मीरा के पदो मे झकृत हाता हुआ सुनाई देता है। मीरा

की यही सर्व श्रेष्ठ कला है, और इसी कला से मीरा स्वय भी जगत मे सर्व श्रेष्ठ बन सकी हैं।

मीरा जोधपुर के राठौर वश मे कुडकी गॉव मे उत्पन्न हुई थीं। इनके जन्म सम्वत् के सम्बन्ध मे अभी तक कोई निश्चित् मत नहीं स्थिर हो सका है, किन्तु इनका जन्म सवत् १५५५ और सवत् १५६० के मध्य मे हुआ होगा। इनके पिता का नाम रत्नसिह और दादा का नाम रावदूदा जी था। ये अपने माता-पिता की अकेली सन्तान थीं, अतएव इनके लालन-पालन मे प्यार और दुलार को अधिक महत्त्व दिया जाता था।

मीरा जी बाल्यावस्था से ही गिरिधर गोपाल की भक्त थीं। मीरा जी की इस बाल-भक्ति के सम्बन्ध मे दो एक कहानियॉ कही जाती है। मीरा जी के जीवन-चरित्र के लेखको ने भी इन कहानियो को विशेष महत्त्व दिया है। मीरा जी गिरिधर गोपाल की ओर कैसे आकर्षित हुई, इस सम्बन्ध मे एक बडी रोचक कहानी कही जाती है। लोगो का कहना है, कि एक दिन मीरा के पडोस मे एक बारात आई। बारात मे दूल्हे को देख कर मीरा ने अपनी मॉ से पूछा, 'मॉ' मेरा दूल्हा कौन है ? माँ के मुख से निकल पडा, कि गिरिधर गोपाल। लोगो का कहना है, कि बस, उसी समय से मीरा के हृदय मे गिरिधर के लिये प्रेम उत्पन्न हो गया, और वे गिरिधर गोपाल की मिट्टी की मूर्ति बना कर उसी के चरणों मे अपने हृदय का प्रेम निछावर करने

लगीं। इसी के आगे एक और किम्बदन्ती कही जाती है, और वह यह है, कि मीरा की बाल्यावस्था मे एक दिन उनके घर एक साधु आया। साधु के पास गिरिधर गोपाल की एक मूर्ति थी। मीरा ने किसी प्रकार उस मूर्ति को देख लिया और फिर उसके लिये साधु से आग्रह किया। किन्तु साधु ने मीरा की न सुनी। सुनते हैं, इस पर गिरिधर गोपाल ने स्वप्न मे स्वय साधु से अपनी मूर्ति मीरा को सौप देने के लिये कहा था।

जो हो, किन्तु घटनाओं और तथ्यो के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है, कि मीरा जी बचपन मे ही गिरिधर गोपाल की भक्त थीं। ज्यो ज्यों वे जीवन-क्षेत्र मे आगे बढती गई, त्यों त्यो उनकी भक्ति भी अधिक प्रवल होती गई। ससार की परिस्थितियो ने उनकी इस भक्ति को और भी अधिक चमका दिया। १५१६ ई० मे मीरा जी का विवाह राणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज जी के साथ कर दिया गया। किन्तु कुछ ही दिनो के पश्चात् भोजराज जी मर गये, और वे विधवा हो गई। इस घटना के बाद ही मीरा जी एक प्रवल साधिका के रूप मे ससार मे प्रगट होती हैं। ससार उनकी दृष्टि मे तुच्छसे भी अधिक तुच्छ दिखाई देता है, और वे गिरिधर के प्रेम मे रँग जाती हैं। वे गिरिधर के प्रेम में नाचतीं, गाती और साधुओं के साथ करताल की झंकार करती हैं। तत्कालीन राजा विक्रमाजीत सिंह जी को

मीरा का यह जीवन अधिक बुरा मालूम हुआ, और उन्होंने मीरा के जीवन पर अधिक अत्याचार भी किये। यहाँ तक कि मीरा की मृत्यु के लिये उन्हे विषपान भी कराया गया, किन्तु मीरा जी अपने पथ से न हटीं। वे बराबर गिरिधर के प्रेम-पथ पर आगे बढती गई और इतना बढ गई, कि राज-प्रसाद को छोड कर वृन्दावन चली गई, और वहीं उन्होने अपने प्रियतम के विरह मे अपने को उत्सर्ग कर दिया।

मीरा जी ने अपने विरह-गीतो और पदो का निर्माण करना कब से आरभ किया, इस सम्बन्ध मे कोई बात निश्चित् रूप से नहीं कही जा सकती। एक विद्वान लेखक का कथन है, कि मीरा जी विवाह के पूर्व ही गीतो की रचना करने लगी थीं। जो हो, किन्तु यह तो सत्य है, कि मीरा जी जब ससुराल मे आई, तब उनकी कविता-कला प्रस्फुटित हो चली थी। पति की मृत्यु के पश्चात् और राणा के अत्याचारो के समय तो उसमें मीरा का हृदय भी बोलने लगा था। मीरा के पदो और गीतो को एकत्र करके देखने से मीरा की कविता के क्रम-विकास का पता भली भाँति चल जाता है। ज्यों ज्यों मीरा की पीर बढती गई है, त्यो त्यो उनकी कविता भी जागृत होती गई है और अन्त मे इतनी जागृत हो उठी है, कि दार्शनिक बन गई है।

मीरा के निम्नांकित पदो मे उनकी भक्ति, प्रेम, विरह और दार्शनिकता को देखिये:—

[१]

मेरे गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ॥
तात मात भ्रात पूत अपनो नहि कोई ।
छाँडि दई कुल की कानि करिहै कहा कोई ॥
सन्तन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई ।
चुनरी के किये टूक ओढि लीन्ह लोई ॥
मोतिन की हार डारि गुंज-माल पोई ।
अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई ।
अबतो बेलि फैल गई, आनँद-फल होई ॥
दूध की मथनिया बडे प्रेम सो बिलोई ॥
माखन जब काढि लियौ छाछ पियै कोई ॥
आई मैं भक्ति काज जगत जोहि मोही ।
मीरा के गिरिधर प्रभु तारौ अब मोही ॥

[२]

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो ।

वस्तु अमोलक दी मेरे सत गुरु किरपा कर अपनायो ।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग मे सभी खोवायो ॥
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बढत सवायो ।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु भवसागर तर आयो ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर हरख हरख जस गायो ॥

[३]

दरस बिन दूखन लागे नैन ।
जब ते तुम बिछुरे पिय प्यारे कबहुँ न पायो चैन ।
सबद सुनत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे लागै बैन ।
एक टकटकी पन्थ निहारूँ, भई छमासी रैन ॥
विरह-विथा काँसू कहू सजनी वह गई करवत ऐन ।
मीरा के प्रभु कब हो मिलोगे, दुख मेटन, सुख दैन ॥

[४]

तेरा कोई नहिं रोकन हार मगन होय मीरा चली ।
लाज सरम कुल की मर्यादा सिर से दूर करी ॥
मान-अपमान दोऊ धर पटके निकसी हूं ज्ञान-गली ।
ऊँची अटरिया, लाल किवडिया, निरगुन सेज बिछी ।
पँच रगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली ॥
बाजू बन्द कडूला सोहै, सेदुर माँग भरी ।
सुमिरन थाल हाथ मे लीन्हा सोभा अधिक भली ॥
सेज सुख मणा मीरा सोवै, सुभ है आज घरी ।
तुम जावो राणा घर अपणे मेरी तेरी नाहिं सरी ॥

[५]

हेरी मै तो प्रेम दीवाणी मेरा दरद न जाने कोय ।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोणा होय ।
गगन मडल म सेज पिया की, किस विधि मिलणा होय ।

घायल की गति घायल जाने, की जिन लाई होय ॥
जौहरी की गति जौहरी जानै की जिन जौहर होय ।
दरद की मारी बन बन डोलूँ वैद मिल्या नहिं कोय ।
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया होय ॥

[६]

रमैया मै तो थाँरे रँग राँती ।

औरो के पिया परदेश बसत है, लिख लिख भेजे पाती ।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है, गूँज करूँ दिन राती
चूवा चोला पहिर सखी री मै झुरमुट रमवा जाती ।
झुरमुट मे मोहि मोहन मिलिया, खोल मिलूँ गल बारी ॥
और सखी मद पा पी माती, मै बिना पियाँ मद माती ।
प्रेम मठी को मै मद पीयो, छकी फिरूँ दिन राती ॥

[७]

घडी एक नहि आवणे, तुम दरसन बिन मोय ।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जोवण होय ॥
धान न भावै, नीद न आवै, विरह सतावै मोय ।
घायल सी घूमत फिरूँ रे मेरा दरद न जाने कोय ॥
दिवस ता खाय गमायो रे, रैण गमाई सोय ।
प्राण गमायो झूरता रे, नैण गमाई रोय ॥
जो मै ऐसा जाणती रे प्रीति किये दुख होय ।
नगर ढिढोरा फेरती रे, प्रीति करो मत कोय ॥

पथ निहारूँ, डगर बुहारूँ, ऊबी मारग जोय ।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय ॥

[८]

सखी मेरी नींद नसानी हो ।
पिय को पथ निहारत सिगरी रैन बिहानी हो ॥
सब सखियन मिलि सीख दई मन एक न मानी हो ।
बिन देखे कल नाहिं परत जिय ऐसी ठानी हो ॥
अंग छीन, व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी हो ।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीर न जानी हो ॥
ज्यों चातक घन को रटै, मछरी जिमि पानी हो ।
मीरा व्याकुल विरहिनी, सुध-बुध बिसरानी हो ॥

[९]

नैनन बनज बसाऊँ, जो मैं साहिब पाऊँ री ।
न नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ री ।
महल में बना झरोखा, वहाँ से झाँकी लगाऊँ री ॥
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बार बार बलि जाऊँ री ॥

[१०]

मेरा बेडा लगाय दी जो पार प्रभु जी अरज करूँ छूँ ।
या भव में मैं बहु दुख पायो ससा सोग निवार ।
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख भार ॥
यों संसार सब बह्यो जात है, लख चौरासी धार ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर आवागमन निवार ॥

प्रवीणराय

प्रवीणराय की कविता न तो समाज के चित्र को लेकर उपस्थित होती है, और न किसी व्यापक आदर्श को। किन्तु उसमे प्रवीण राय के हृदय की हिलोर अवश्य है। उनकी उस हिलोर मे वासना और विलास भावना की गन्ध है। गन्ध ही नहीं, बल्कि कहना तो यह चाहिये, कि उनकी काव्य-कल्पना इसके आगे सुदूर तक जा ही नही सका। उनका प्रमुख विषय है, शृ गार। किन्तु शृ गार मे भी उन्होने एक भावना को ही अधिक महत्त्व दिया है, और उनकी एक भावना है, उनका वह विलास। उनकी इस विलास-भावना मे उनकी जीवन की छाप है। उन्होने अपने जीवन के अनुकूल ही अपनी काव्य-कल्पना को भी बनाने का प्रयत्न किया है, और इसमे सन्देह नहीं, कि वे इस कार्य मे बहुत कुछ अशो मे सफल हुई है।

यह सच है, कि प्रवीण राय की कविता मे उच्च और व्यापक कल्पना के दर्शन नही होते किन्तु यह भी सच है, कि उनकी कविता जोरदार, सुसगठित और भाव मयी है। उसमे

एक प्रवाह है, एक गति है, एक शृंखला है। उनकी कविता की शब्द योजना, और भावों को परिस्फुटित करने वाली उनकी उपमाओं को देखकर यह कहना पड़ता है, कि प्रवीणराय काव्य के अंगों से भली भाँति परिचित थीं, और उनमे भावों को प्रगट करने की पर्याप्त क्षमता भी थी। प्रमाण के लिये उनके निम्नांकित छन्द का अवलोकन कीजिये:—

कमल कोक श्रीफल मँजीर कलधोत कलश हर।
उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नीलधर॥
सरवन शरवन हेय मेरु कैलाश प्रकाशन।
निशि वासर तरुवरहि कास कुन्दन दृढ आसन॥
इमि कहि प्रवीन जल थल अपक अविध भजित तिय गौरि संग।
कलि खलित उरज उलटे सलिल, इन्दु शीश इमि उरज ढग।

कितनी सुसंगठित और सुन्दर शब्द योजना है, और यह उस समय की एक हिन्दी कवयित्री की शब्द योजना है, जब स्त्रियाँ अधिकांशतः साहित्य-ज्ञान से अपरिचित थीं। प्रवीण राय की यह अपनी एक बहुत बड़ी विशेषता है। उनकी इस विशेषता की प्रशंसा महाकवि केशवदास जी ने भी की है। केशवदास जी ने प्रवीणराय की प्रशंसा में ही 'कवि प्रिया' नामक एक ग्रन्थ की भी सृष्टि की है, और उसके बहुत से छन्द प्रवीणराय ही से सम्बन्ध रखते हैं। प्रवीणराय केशवदास जी की शिष्या भी थीं। इसीलिये प्रवीणराय की शब्द-योजना

पर महाकवि केशव की भी कुछ कुछ छाप दिखाई देती है।

प्रवीणराय ओडछा नरेश महाराज इन्द्रजीत सिंह की वेश्या थी। वह इन्द्रजीतसिंह को अधिक प्यार करती थी। किन्हीं कारणो वश उसे अकबर के दरबार मे जाना पडा। प्रवीणराय की एक कविता से प्रगट होता है, कि वह अकबर के दरबार मे जाना नहीं चाहती थी, किन्तु फिर भी उसे विवश होकर अकबर के दरबार मे जाना पडा। अकबर के दरबार मे जाने के पूर्व उसने महाराज से जो निवेदन किया था, उसमे उसके हृदय की विवशता को देखिये '—

आई हौ बूझन मत्र तुम्है निज स्वासन सो सिगरी मति गोई।
देह तजौं, कि तजौ कुल कानि हिये न लजौ लजि हैं सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामे रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भग न होई॥

प्रवीणराय अकबर बादशाह के दरबार मे जाकर रहने लगी। वहॉ उसने अपनी कविताओं से बादशाह का अच्छा मनोरजन किया। किन्तु प्रवीणराय का चित्त वहॉ न लगता था। वह पुन' ओडछा लौट आना चाहती थी। एक बार उसने बडी ही चतुराई से अकबर बादशाह को दो छन्द सुनाये। उन छन्दों का अकबर के ऊपर ऐसा प्रभाव पडा, कि उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध उसे महाराज के पास भेज दिया। प्रवीणराय के वे दोनों छन्द इस प्रकार है :—

[१]

अग अनग नही कछु सभु सुकेहरि लक गयन्दहिं घेरे।
भौह कमान नहीं मृग लोचन खजन क्यों न चुगै तिलि तेरे ॥
है कच राहु नहीं उदै इन्दु सुकीर के बिम्बन चोचन तेरे।
कोऊ न काहू सो रोस करै सुडरै डर साह अकब्बर तेरे ॥

[२]

विनती राय प्रवीन की, सुनिये साह सुजान ॥
जूठी पतरी भखत है, बारी-वायस, स्वान ॥

यहाँ हम प्रवीणराय के कुछ छन्दों को उद्धृत कर रहे हैं। उनसे पाठकों को प्रवीणराय को सुगठित शब्द-योजना और काव्य-कल्पना का भली भाँति परिचय प्राप्त हो जायगा:—

[१]

नीकी घनी गुन नारि निहारि नेवारि तऊ अँखियाँ ललचाती।
जान अजानन जो रित दीठि बसीठि के ठौरन औरन हाती ॥
आतुरता पिय के जिय की लखि प्यारी प्रवीन बहै रस माती।
ज्यों ज्यो कछू न बसाति गोपाल की त्यों त्या फिरै घर मे मुसुकाती ॥

[२]

सीतल सरीर टार, मजन कै घन सार,
अमल अँगोछे आछे मन मे सुधारि हौं।
देहौं न अलक एक लागन पलक पर,
मिलि अभिराम आछी तपन उतारि हौं।

कहत 'प्रवीणराय' आपनी न ठौर पाय,
सुन वाम नैन या बचन प्रति पारि हौं।
जब हीं मिलेंगे मोहिं इन्द्रजीत प्रान प्यारे,
दाहिनो नयन मूँदि तोही सौ निहारि हौं॥

[३]

मान कै बैठी है प्यारी 'प्रवीन' सो देखै बनै नहि जात बनायो।
आतुर ह्वै अति कौतुक सों उत लाल चले अति मोद बढायो॥
जोरि दोऊ कर ठाढे भये करि कातर नैन सों सैन बतायो।
देखत बेंदी सखी की लगी, मित हेर्यो नहीं इतयों बहरायो॥

—:o:—

ताज

वह एक विशेष प्रकार का युग था। नन्दलाल की बाँसुरी ने भारत के कोने-कोने मे अपना माधुर्य बिखेर दिया था। नन्दलाल की बाँसुरी बज कर बन्द हो चुकी थी, किन्तु उसकी झंकार अब भी लोगो के कानो मे हो रही थी, और अब भी हो रही है, और चिरकाल तक होती रहेगी। साधारण मनुष्य उसे केवल एक बाँस की बाँसुरी की झंकार समझते है, किन्तु जिनके हृदय मे आँखे होती है, और जो दार्शनिक-ज्ञान के श्रवण से उस झंकार को सुनते है, उन्हे उसमे एक दूसरा ही रस मिलता है। वह रस मिलता है, जो ससार के बाहर की वस्तु है, और जो दुर्लभ है, जो अमूल्य है। महात्मा सूरदास नन्दलाल की बाँसुरी के इसी रस पर रीझे थे। मीरा इसी के लिये मतवाली हुई थी, और रसखान ने इसी के ऊपर अपने को निछावर कर दिया था। ताज भी उसी पर लुटी हुई दिखाई देती है।

ताज एक भक्त महिला थीं। वे जाति की मुसलमान थीं। किन्तु उनका हृदय जाति-पांति की सीमा से बहुत दूर था। उनकी जो कुछ कवितायें प्राप्त हो सकी है, उनसे यह पता चलता है, कि उनका हृदय विशाल था, और उस विशाल हृदय मे ज्ञान की व्यापक भावनाये थीं। उन्हे कृष्ण मे एक दूसरी ज्योति का दर्शन होता था। कृष्ण की बाँसुरी मे उनके कान एक दूसरे ही प्रकार का स्वर सुनते थे। वे कृष्ण को 'सत्य शिव सुन्दरम्' के रूप मे ससार-सीमा पर खडा होकर जगत और जगत के मनुष्यो का कल्याण करता हुआ देखती थीं। इसीलिये वे कृष्ण और कृष्ण की बाँसुरी पर, रीझ कर, अपना सर्वस्व निछावर करने के लिये तैयार रहती थी। जाति, सासारिक धर्म, कलमा, कुरान सब कुछ। उन्हे इन समस्त वस्तुओ से कृष्ण बहुत ऊपर दिखाई देते थे।

ताज वैष्णव मतावलम्बिनी थीं, और वे ईश्वर के साकार रूप की उपासना करती थी। किन्तु उनका कृष्ण साकार होते हुये भी निराकार था। उन्हे अपने साकार कृष्ण के स्वरूप मे उस ज्योति का दर्शन होता था, जिसका कोई स्वरूप ही नहीं था। ताज ने अपने एक कवित्त मे अपनी इस भक्ति का कुछ परिचय भी दिया है। यों तो सभी भक्त कवि अपने साकार और सगुण उपास्य मे 'निराकार' की ज्योति का दर्शन करते है, किन्तु ताज इस क्षेत्र मे कुछ और भी आगे बढ़ी हुई दिखाई देती हैं। वे एक मुसलमान महिला होकर जब कृष्ण के ऊपर

[library stamp]

अपना सर्वस्व निछावर करती हुई दिखाई देती है, तब यह कहना ही पड़ता है, कि कृष्ण की सगुण और साकार उपासना मे उनका हृदय निर्गुण उपासना का आनन्द प्राप्त करता था।

ताज की कविता बहुत सीधी-सादी, किन्तु हृदय के भावों से गुंथी हुई है। न तो उसमे शब्दों का भण्डार है, और न भावो की गहराई, किन्तु सीधे-सादे शब्दों मे उसमे ताज के हृदय की विशालता अवश्य छिपी हुई है। ताज ने कृष्ण के प्रति जहां अपना प्रेम प्रगट किया है, वहाँ भक्ति के साथ ही साथ उनके हृदय की दृढता है, और इस दृढता का चित्र उन्होंने अपनी कविता मे बडी ही दृढता के साथ चित्रित किया है। ताज की सीधी-सादी कविता की यही एक बहुत बडी विशेषता है। अपनी इस विशेषता की शक्ति से ताज की कविता सीधी-सादी होने पर भी मानव-हृदय को छूती हुई दिखाई देती है।

ताज कौन थीं, कहाँ और कब उत्पन्न हुई, इनके मां बाप का क्या नाम था, यह तो अभी अन्धकार के गर्भ मे है। किसी का कहना है, इनका जन्म स० १६५२ मे हुआ, और किसी का कथन है कि स० १७०० के लगभग। हिन्दी मे तो इनके सम्बन्ध मे कोई पुस्तक मिलती नही, किन्तु गुजराती की एक पुस्तक के आधार पर इनका जन्म सम्वत १७०० के लगभग माना जा सकता है। स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई के निम्नांकित पत्र से ताज के जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है —

"ताज नाम की एक मुसलमान स्त्री-कवि करौली मे हो गई

है। वह नहा-धोकर मन्दिर मे नित्य-प्रति भगवान का दर्शन करती थी, और इसके पश्चात् भोजन ग्रहण करती थी। एक दिन वैष्णवो ने उसे विधर्मी समझ कर मन्दिर मे दर्शन करने से रोक दिया। इससे ताज उस दिन उपवास करके मन्दिर के आँगन मे ही बैठी रह गई और कृष्ण के नाम का जप करती रही। जब रात हुई, तब ठाकुर जी स्वय मनुष्य के रूप म भोजन का थाल लेकर ताज के पास आये और कहने लगे तूने आज जरा सा भी प्रसाद नही खाया। ले अब इसे खा। कल प्रात· काल जब सब वैष्णव आवे, तब उनसे कहना कि तुम लोगों ने मुझे कल ठाकुर जी का प्रसाद और दशन का सौरव्य नहीं दिया, इससे आज रात को ठाकुर जी स्वय मुझे प्रसाद दे गये हैं और तुम लोगो को सदेश कह गये है, कि ताज को परम वैष्णव समझो। इसके दर्शन और प्रसाद ग्रहण करने में रुकावट कभी मत डालो। नहीं तो ठाकुर जी तुम लोगों से नाराज हो जायँगे। प्रात काल जब सब वैष्णव आये, तो ताज ने सारी बाते उनसे कह सुनाई। ताज के सामने भोजन का थाल रक्खा देख कर वे अत्यन्त चकित हुये। वे सभी वैष्णव ताज के पैर पर गिर पडे और क्षमा-प्रार्थना करने लगे। तब से ताज प्रतिदिन भगवान का दर्शन करके प्रसाद ग्रहण करने लगी। पहले ताज मन्दिर मे जाकर ठाकुर जी का दर्शन कर आती थी, तब और दूसरे वैष्णव दर्शन करने जाते थे।"

"ताज कवि परम वैष्णव और महा भगवद् भक्त थी उन्हीं

ठाकुर जी की कृपा से यह कवि हो गई। जब मै करौली गया था, तब अनेक वैष्णवो के मुख से मैने यह बात सुनी थी। वहीं मैंने इनकी अनेक कविताये भी सुनी। उसी समय मैंने इनकी कितनी ही कविताये लिख भी ली थीं। ताज की दो सौ कविताये मेरे हाथ की लिखी हुई मेरे निजी पुस्तकालय मे हैं।"

ताज के जीवन के सम्बन्ध मे बस इतना ही पता चलता है। किन्तु यह तो निश्चित् है कि वे कृष्ण-प्रेम मे दीवानी थीं, और उनकी सारी कविता कृष्ण-भक्ति के रग मे रँगी हुई है। इनके पदो की भाषा से पता चलता है, कि य पजाब प्रान्त की रहने वाली थी। मथुरा के कविराज चौबे नवनीत का कथन है:—ताज एक मुसलमान स्त्री कवि थी, और पजाब की रहने वाली थी। कृष्ण से प्रेम हो जाने पर कविता की ओर इनका ध्यान हो गया था, कृष्ण के प्रेम मे रँगी हुई ताज की कुछ कविताये देखिये:—

[१]

दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मै।
देव पूजा ठानी हौ निवाज हूँ भुलानी तजे,
कलमा कुरान सारे गुन न गहूँगी मै।
श्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
तेरे नेह दाग मे निदाग ह्वै रहूँगी मैं।

नन्द के कुमार, कुरबान ताणी सूरत पर,
हौं तो तुरकानी हिन्दुआनी ह्वै रहूंगी मैं ॥

[२]

कालिन्दी के तीर नीर-निकट कदम्ब कुज,
मन कछु इच्छा कीनी सेज सरोजन की।
अन्तर के यामी, कामी. कवँल के दल लेके,
रची सेज तहाँ शोभा कहा कहौ तिनकी।
तिहि समै 'ताज' प्रभु दम्पति मिले की छवि,
बरन सकत कोऊ नाही वाही छिनकी।
राधे की चटक देखे, अँखियाँ अटक रही,
मीन को मटक नाहिं साजत वा दिन की ॥

[३]

चैन नहीं मन मे न मलीन सुनैन परे जल मे न तई है।
ताज कहै परयक यो बाल ज्यों चपकी माल विलाय गई है ॥
नेकु विहाय न रैन कछू यह जान भयानक भारि भई है।
भौन मे भानु समान सुदीपक अगन मे मनो आगि दई है ॥

—:०:—

शेख

गोस्वामी तुलसीदास, भा०, और महात्मा सूरदास जी ने हिन्दी-जगत मे काव्य की जो धारा बहाई थी, वह आगे चल कर मन्द पड गई। मन्द ही नहीं पड गई, बल्कि कहना तो यह चाहिये, कि उसका एक प्रकार से बिलकुल रूप ही बदल गया। काव्य की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास और महात्मा सूरदास जहाँ कल्पना के अनन्त जगत मे विचरते हुये दिखाई देते हैं, वहाँ उनके पश्चात् के कवि एक सीमा के भीतर ही दौड़ लगाकर रह जाते है। सूरदास और मीरा इत्यादि ने जिस नन्दलाल को अपनी दार्शनिक आँखों से देखकर व्यापक कल्पना की सृष्टि की थी, उन्ही को पश्चात् के कवियो ने एक साधारण नायक का स्वरूप प्रदान करके हिन्दी साहित्य मे लाकर खड़ा कर दिया है। देव, बिहारी, मतिराम, इत्यादि इसी प्रकार के कवि थे। इसमे सन्देह नही, कि कृष्ण काव्य के रचयिताओं मे इन कवियों की प्रमुखता है, और इसमे भी सन्देह नहीं कि इन्होंने अपने विषयो का प्रतिपादन बडी ही गहराई के साथ

किया है, किन्तु साथ ही इसमे भी सन्देह नही, कि इन्होंने कृष्ण और राधिका को एक साधारण नायक नायिका का स्वरूप प्रदान करके कविता के असीमित सिद्धान्तों को सीमा मे बद्ध कर दिया। कृष्ण और राधिका को सामने रख कर इन महाकवियों ने श्रृङ्गार रस की जो धारा बहाई, उसमे बहुत से कवि बह गये, और यह धारा तब तक अविच्छिन्न गति से आगे बढती गई, जब तक इन्हीं की तरह का कोई ऐसा महाकवि हिन्दी मे नहीं उत्पन्न हुआ, जिसमे कि कविता की धारा को मोड देन की शक्ति हो।

उक्त महाकवियो ने श्रृङ्गार रस की जो धारा बहाई थी, उसी म शेख भी बह गई थी। शेख ने भी श्रृङ्गार रस को ही अपनी कविता का आधार-रस बनाया है। इन्होने कृष्ण और राधिका को एक साधारण नायक नायिका की दृष्टि से देखा है, और इसी की दृष्टि से उनके वियोग और समिलन का चित्रण भी किया है। इनकी कविता मे न पीडा है, न कसक है। न उल्लास है, न उन्माद है। इसीलिये इनकी कविता-कल्पना अधिक सीमित भी हो गई है। किन्तु यह शेख का दोष नहीं, वह तो कविता-कल्पना का सीमित युग ही था। बडे बडे महाकवियों की कविता-कल्पना जब उस सीमित युग से आगे नहीं जा सकी, तब फिर शेख की बात ही क्या ?

शेख की अधिकाश कविताओं मे नायक नायिकाओं ही का वर्णन पाया जाता है। नायक नायिकाओ के वर्णन मे शख यदि

किसी से आगे नहीं, तो बहुत पीछे भी नही दिखाई देती। इनके स्त्री हृदय ने कही-कही नायिकाओ के वर्णन मे बडे अनूठे चमत्कार का प्रदर्शन किया है। नायक नायिकाओ के प्रेम को जागृत करने के लिये शेख ने जिन उक्तियो का आश्रय लिया है, वे सजीव होने के साथ ही साथ चमत्कार-पूर्ण भी है। भले ही शेख की कविता मे सीमित कल्पना हो, किन्तु शेख मे अपने हृद्‌गत भावो को कविता मे प्रस्फुटित करने की सफल शक्ति अवश्य थी। शेख ने जहाँ जिसका वर्णन किया है, सफलता के साथ चमत्कारिक ढग से किया है।

सम्वत् १७१२ क लगभग हिन्दी मे आलम नाम के एक बहुत बडे कवि हो गये है। शेख इन्ही की स्त्री थीं। विवाह के पूर्व दोनो विभिन्न धर्म के मानने वाले थे। आलम सनाढ्य ब्राह्मण थे, और शेख रँगरेजिन थी। दोनों मे प्रेम पैदा हो गया। आलम शेख पर विमुग्ध होकर के ही इस्लाम मे दीक्षित हो गये। आलम और शेख के प्रेम का सूत्रपात कैसे हुआ, इस सम्बन्ध मे साहित्य के इतिहास मे निम्नाकित घटना पाई जाती है:—

एक बार आलम ने शेख के पास अपनी पगडी रँगने के लिये भेजी। शेख ने जब पगडी खोली, तब उसमे उसे एक छोटा सा कागज मिला। कागज पर लिखा था —

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।

आलम ने शेख के सौन्दर्य पर विमुग्ध होकर यह पद

लिखा था, या नहीं, इस सम्बन्ध मे कुछ कहा नही जा सकता। किन्तु शेख ने इस अधूरे दोहे को पूरा करके पगडी ही के द्वारा आलम के पास भेज दिया। शेख का इसकी पूर्ति मे बनाया हुआ दूसरा चरण इस प्रकार है:—

कटि को कचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन।

आलम को जब यह पूर्ति मिली, तब वे बहुत प्रसन्न हुये, और शेख पर फ़िदा हो गये। इतने फ़िदा हो गये, कि उसी के लिये मुसलमान हो गये। मुशी देवी प्रसाद का कहना है, कि आलम ने दोहे का प्रथम चरण नही, बल्कि कविता के तीन चरण शेख के पास भेजे थे। मुशी जी के कथनानुसार आलम के भेजे हुये तीन चरण इस प्रकार है.—

"प्रेम रँग पगे जगमगे जगे जामिनि के,
जोबन की जोति जगि जोर उमगत है।
मदन के माते, मतवारे ऐसे घूमत हैं,
झूमत है झुकि झुकि झपि उघरत हैं।
आलम सो नवल निकाई इन नैननि की,
पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत है।"

और शेख ने चौथे चरण की पूर्ति इस प्रकार की थी:—

"चाहत है, उडिबे को देखत मयक मुख,
जानत है रैनि ताते ताहि मै रहत है।"

जो हो, शेख आलम की स्त्री थीं और उनकी कविता का

काव्य विषय शृङ्गार था। नीचे के कवित्तो मे उनके शृङ्गार और नायक नायिका का वर्णन देखिये:—

[१]

कीनी चाहौ चाहिली नवोढा एकै बार तुम,
एक बार जाय तिहि छलु डरु दीजिये।
'सेख' कहै आवन सुहेलः सेज आवै लाल,
सीखत सिखैगी मेरी साख सुनि लीजिये।
आवन को नाम सुनि सावन किये है नैन,
आवन कहै सुकैसे आइ जाइ छीजिये।
बरबस बस करिबे को मेरो बस नाहिं,
ऐसी बैस कहौ कान्ह कैसे बस कीजिये॥

[२]

सुनि चित चाहै जाकी किंकिनी की झनकार,
करत कलासी सोइ गति जु बिदेह की।
सेख' भनि आजु है सुफेरि नहिं काल्ह जैसी,
निकसी है राधे की निकाई निधि नेह की।
फूल की सी आभा सब सोभा लै सकेलि धरी,
फूलि ऐहै लाल भूलि जैहै सुधि गेह की।
कोटि कवि पचै, तऊ बरनि न पावै फवि,
बेसरि उतारे छबि बेसरि के बेह की॥

[३]

जागन दै जोन्ह सीरी लागन दै रात जैसे,
जात सारी सेत मे सघात की न जाति है।

अथये की भीर परी साथ लीजै मोसी नारि,
आतुरी न होइ यह चातुरी की खानि है।
घूँघट ते 'सेख' मुख जोति न घटैगी छिनु,
झीनो पट न्यारिये झलक पहिचानि है।
तू तौ जानै छानी पै न छानी या रहैगी बीर,
छानी छवि नैनन की काको लोहू छानि है।

[४]

नेह सो निहारि नाहु नेकु आगे कीने बाहु,
छाहियों छुवत नारि नाहियो करति है।
प्रीतम के पानि पेलि आपनी भुजै सकेलि,
धरकि सकुचि हियौ गाढौ कै धरति है।
'सेख' कहि आधे बैना बोलि कर नाचे नैना,
हा हा करि मोहन के मनहिं हरति है।
केलि के अरम्भ खिन खेल के बढायबे को,
प्रोढा जो प्रवीन सो नवोढा ह्वै ढरति है।

रसिक बिहारी

रसिक बिहारी साधारण कोटि की कवियित्री थीं। इनकी कविता का प्रमुख विषय शृंङ्गार है। इन्होने भी अपने समकालीन कवियों की तरह शृंगार ही का वर्णन किया है। नायक नायिका के रूप मे जहाँ इन्होंने राधा-कृष्ण का चित्रण किया है वहाँ भी एक साधारण ही कोटि की भावना के दर्शन होते है। मीरा और ताज की तरह इनकी कविता मे भक्ति-भावना तो नहीं है, किन्तु इन्होने राधा-कृष्ण के पारस्परिक प्रेम का अच्छा वर्णन किया है, और उस वर्णन मे शृङ्गार की ही विशेष प्रधानता है।

रसिक बिहारी का वास्तविक नाम 'बनी ठनी जी' था। ये महाराज नागरीदास जी की शिष्या थीं। महाराज नागरीदास जी अठारहवीं शताब्दी में हिन्दी के एक भक्त कवि हो गये हैं। नागरीदास जी से ही इन्होंने कविता करनी सीखी थी। ये भक्त थीं, किन्तु आश्चर्य है, कि इनकी कविता मे भक्ति का पुट नहीं है। इनकी भक्ति-भावना मे भी शृङ्गार का ही पुट है।

कहीं कहीं शृङ्गार-वर्णन अधिक हृदय स्पर्शी और मधुर है। नीचे की कविताओं से इनकी काव्य-कल्पना का उक्त परिचय प्राप्त कीजिए —

[१]

धीरे झूलो री राधा प्यारी जी।

नवल रगीली सबै झुलावत गावत सखियाँ सारी जी।
फरहरात अचल चल चचल लाज न जात सँभारी जी।
कुञ्जन ओट दुरे लखि देखत प्रीतम रसिक बिहारी जी।

[२]

कुंज पधारो रग-भरी रैन।

रंग भरी दुलहिन रँग भरे पिया श्याम सुन्दर सुख दैन।
रग भरी सेज रची जहाँ सुन्दर रग भर्‌यो उलहत मैन॥
रसिक बिहारी प्यारी मिलि दोउ करौ रंग सुख-चैन॥

[३]

रत नारी हो प्यारी अँखडियाँ।

प्रेम छकी रस-बस अलसाणी जाणि कमल की पांखडियाँ।
सुन्दर रूप लुभाई गति मति हौं गई ब्यूं मधु माखडियाँ।
रसिक बिहारी वारी प्यारी कौन बसी निसि काँखडिया।

[४]

ये बाँसुरिया वारे ऐसो जिन बतरायरे।

यों बोलिये, अरे घर बसे लाजनि दबि गई हायरे।

हौं वाई या गैलहिं सों रे नैन चल्यौ वौं जायरे।
रसिक बिहारी नॉव पायकै क्यो इतनो इतरायरे।

[५]

कैसे जल लाऊ मै पनघट जाऊँ।

होरी खेलत नन्द लाडिलो क्यो कर निबहन पाऊं।
वे तो निलज फाग मदमाते हौं कुल-बधू कहाऊं।
जो छुवे अचल रसिक बिहारी धरती फार समाऊं।

[६]

होरी होरी कहि बोले सब ब्रज की नारि।

नन्द गॉव बरसानो हिलि मिलि गावत इत उत रस की गारि
उडत गुलाल अरुण भयो अम्बर चलत रग पिचकारि कि धारि।
रसिक बिहारी भानु-दुलारी नायक सग खेले खेलवारि।

—:o:—

सहजोबाई

भक्ति-आकाश पर चमकने वाले तारों मे सहजो भी एक वह प्रकाशवान ज्योति है जिसे भक्त लोग बडे प्यार से देखा करते हैं। भारतवर्ष मे ऐसा कोई भी साधु-सन्त न होगा, जो सहजो के नाम को न जानता हो, और जिसके ओठो पर सहजो के विरचित पद बार-बार न आते हों। ईश्वर-प्रेम का प्याला पीकर अनेक साधको ने अपने भक्ति-आदर्श से ससार को चमत्कृत कर दिया है, किन्तु सहजो के वैराग्य मे कुछ दूसरा ही स्वाद मिलता है। सहजो वैराग्य मे समाविष्ट सी हो गई है। इस प्रकार समाविष्ट हो गई हैं, कि उनमे और वैराग्य मे कुछ विशेष अन्तर ही नहीं ज्ञात होता। उनकी यह सलग्नता और उनकी यह आत्म विस्मृति उनके पदो और वानियों मे भी स्पष्ट दृष्टि-गोचर होती है। वे जहाँ प्रेम, वियोग और वैराग्य का चित्रण करती हैं, वहाँ ऐसा ज्ञात होता है, कि उन वानियों के भीतर से स्वय सहजो बाई ही बोल रही हैं। देखिए·—

प्रेम दिवाने जो भयो, नेम धरम गयो खोय ।
सहजो नर नारी हँसै, वा मन आनँद होय ॥

सहजो की भक्ति बड़ी ऊँची थी । उन्होंने ईश्वर-प्रेम का वह आन्तरिक पहलू अपनी आँखों से देख लिया था, जिसे देखने के पश्चात् और कुछ देखना शेष नहीं रह जाता । उनकी यह पूर्णता उनके पदो से भली भाँति प्रगट हो रही है । सहजो के पदो मे साकार और निराकार, दोनो प्रकार की उपासनाओ का महत्व है । इन दोनो प्रकार की उपासनाओ के अतिरिक्त सहजो ने एक और भी भक्ति-प्रथा चलाई है, और उनकी वह भक्ति-प्रथा है गुरु की उपासना । यद्यपि सहजो के पूर्ववर्ती कुछ भक्त कवियो ने भी बार बार 'सत गुरु' और 'गुरु महिमा' का नाम लिया है, किन्तु किसी ने डके की चोट पर यह नहीं कहा कि:—

गुरु बिन मारग न चले, गुरु बिन लहै न ज्ञान ।
गुरु बिन सहजो धुन्ध है, गुरु बिन पूरी हान ॥

इसी लिए सहजोबाई अपने गुरु चरणदास जी को ईश्वर के तुल्य समझती थीं । उनकी उपासना, उनकी आराधना सब कुछ ईश्वर के रूप मे अपने गुरु के लिए थी । सहजोबाई ने अपने पदों मे गुरु महिमा को ही विशेष महत्व प्रदान किया है । उनकी धारणा थी कि ससार मे गुरु ही सब कुछ है । सच्चे गुरु के अभाव मे न तो ज्ञान प्राप्त हो सकता है, और न भक्ति की सीधी राह ही मिल सकती है । सहजोबाई अपने गुरु चरणदास जी की महिमा प्रगट करती हुई कहती हैं:—

[१]

सखी री आज जनमे लीला-धारी ।
तिमिर भजैगो, भक्ति खिडेगी, पारायन नर नारी ॥
दरसन करते आनँद उपजै नाम लिये अघ नासै ।
चरचा मे सन्देह न रहसी, खुलि है प्रबल प्रगासै ॥
बहुतक जीव ठिकानो पे है आवागमन न होई ।
जम के दण्ड दहन पावक की तिन कूँ मूल निकोई ॥
होइ है जोगी प्रेमी ज्ञानी, ब्रह्म रूप ह्वै जाई ।
चरण दास परमारथ कारन गावै सहजो बाई ॥

[२]

सखी री आज जनम लियो सुख दाई ।
दूसर कुल मे प्रगट हुए है, बाजत अनँद बधाई ॥
भादो सुदी तीज दिन मगल सात घडी दिन आये ।
सम्बत सत्रह साठ हुए तब सुभ समयो सब पाये ॥
जै जै कार भयो मधि गाऊँ मात पिता मुख देखौ ।
जानत नाहि न कौन पुरुष है, आये है नर भेखौ ॥
सग चलावन अगम पन्थ कूँ, सूरज भक्ति उदय को ।
आप गुपाल साध तन धार्यौ, निहचै मों मन ऐसो ॥
गुरु शुकदेव नाँव धरि दीन्हौ, चरन दास उपकारी ।
सहजो बाई तन मन वारे, नमो नमो बलिहारी ॥

यह है सहजो बाई की गुरु भक्ति और उनका गुरु महिमा। ये अपनी गुरु-भक्ति ही की झाँका से ईश्वर का दर्शन करती थीं।

एक ओर ये ईश्वर के रूप मे गुरु की साकार उपासना करती हैं और दूसरी ओर निर्गुण राग भी अलापती हैं। मीरा की भाँति इनका भी निर्गुण वाद अधिक उच्च और व्यापक है। नीचे की पंक्तियो मे इनके निर्गुणवाद को देखिये:—

नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप।
सहजो सब कछु, ब्रह्म है, हरि परगट हरी रूप ॥
है अखण्ड व्यापक सकल, सहज रहा भर पूर।
ज्ञानी पावै निकट ही, मूरख जानै दूर ॥

सहजोबाई का जन्म कब हुआ, और ये कब मरीं, इस सम्बन्ध मे कुछ विशेष पता नहीं चलता। कुछ लोगो का अनुमान है, कि इनका जन्म सम्वत् १८०० के लगभग हुआ होगा। जिस प्रकार इनके जन्म-मृत्यु के सम्बन्ध मे अभी तक कुछ विशेष पता नहीं चल सका, उसी प्रकार इनके जीवन की समस्त घटनाये भी लुप्त प्राय है। केवल इतना ही पता चलता है, कि ये राजपुताने के एक प्रसिद्ध ढूसर कुल मे उत्पन्न हुई थीं। इनके माता-पिता का क्या नाम था, और ये किस परिस्थिति में पाली पोसी गईं, इसका भी पता नहीं चलता। इनके पदो से इतना अवश्य प्रगट होता है कि जीवन के प्रारंभिक काल मे ही इनके हृदय मे वैराग्य की ज्योति जागृत हो उठी थी और वह इस भाँति बढी, कि इन्होंने अपना विवाह तक न किया और घर से निकल कर महात्मा चरणदास जी के पास चली गईं।

चरणदास जी इनके गुरु थे, और ये उन्हे ईश्वर के तुल्य समझती थीं।

सहजोबाई क निम्नाकित पदों मे उनकी गुरु भक्ति, वैराग्य और ईश्वर-प्रेम-भावना को देखिये:—

[१]

राम तजूँ पै गुरु न विसारूँ, गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ ॥
हरि ने जन्म दियो जग माहीं। गुरु ने आवा गमन छुटाहीं ॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा ॥
हरि ने रोग भोग उरझायो। गुरु जोगी करि सबै छुटायो ॥
हरि ने कर्म मर्म भरमायो। गुरु ने आतम रूप लखायो ॥
फिरि हरि वध मुक्ति गति लाय। गुरु ने सब ही भर्म मिटाये ॥
चरन दास पर तन-मन वारूँ। गुरु न तजूँ हरि को तजि डारूँ ॥

[२]

'सहजो' कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहि।
हरि तो गुरु बिन क्या मिलै, समझ देख मन माहि ॥
परमेसर सूँ गुरु बडे, गावत वेद पुरान।
'सहजो' हरि घर मुक्ति है, गुरु के घर भगवान ॥
'सहजो' यह मन सिलगता, काम-क्रोध की आग।
भली भयो गुरु ने दिया, सील छिमा की बाग ॥
ज्ञान दीप सत गुरु दियौ, राख्यौ काया कोट।
साजन बसि दुर्जन भजे, निकसि गई सब खोट ॥

'सहजो' गुरु दीपक दियौ, रोम रोम उजियार।
तीन लोक द्रष्टा भयो, मिट्यो भरम अँधियार॥
चिऊँटी जहाँ न चढि सकै, सरसों न ठहराय।
सहजो कूँ वा देश में, सत गुरु दई बसाय॥

[३]

अचरज जीवन जगत मे, मरिबो साँचो जान।
'सहजो' अवसर जात है, हरि सूँ ना पहिचान॥
मन बिछुरन यो होइगो, ज्यों तरुवर सूँ पात।
'सहजो' काया प्रान यो, मुख से ती ज्यो बात॥
यह मन्दिर यह नारि है, यह धन यह सन्तान।
तेरो न 'सहजो' कहै, काहे करत गुमान॥
स्वाम ख्वजानो जातु है, ताकी सोधी नाहिं।
'सहजो' खर्ची का रह्यो, कर हिसाब घर माहिं॥
'सहजो' नौबत स्वास की, बाजत है दिन-रैन।
मूरख सोवत है महा, चेतन कूँ नहि चैन॥
आगे भये सो जा चुक, तू भी रहै न कोय।
'सहजो' पर कूँ क्या झुरै, अपना ही कूँ रोय॥

[४]

नया पुराना होय ना, घुन नहि लागे जासु।
सहजो, मारा न मरै, भय नहिं व्यापै तासु॥
सहजो उपजै न मरै, सद बासी नहिं होय।
रात दिवस तामे नहीं, सीत उरन नहिं सोय॥

ताके रूप अनन्त हैं, जाके नाम अनेक ।
ताके कौतुक बहुत हैं, सहजो नाना भेष ॥
आग जलाय सकै नहीं, सस्तर सकै न काटि ।
धूप सुखाय सकै नहीं, पवन सकै नहि आटि ॥
आदि अन्त ताके नहीं, मध्य नहीं तेहि माहिं ।
वार पार नहिं सहजिया, लघू दीर्घ भी नाहिं ॥
परलय में आवै नहीं, उतपति होय न फेर ।
ब्रह्म अनादि सहजिया, घने हिराने हेर ॥
रूप नाम गुन सूं रहित, पाँच तत्त सूँ दूर ।
चरन दास गुरु ने कही, सहजो छिमा हजूर ॥

[५]

बाबा काया नगर बसावौ ।
ज्ञान दृष्टि सूँ घट में देखौ, सुरति निरति लौ लावौ ॥
पाँच मारि मन बस कर अपने, तीनों ताप नसावौ ।
सत सन्तोष गहै दृढ़ सेती, दुर्जन मारि भजावौ ॥
सील छिमा धीरज कूँ धारौ, अनहद बंब बजावौ ।
पाप बानिया रहन न दीजै, धरम सजार लगावौ ॥
सुबस बास हो वै जब नगरी, बैरी रहै न कोई ।
चरन दास गुरु अमल बनायो, सहजो संभलो सोई ॥

[६]

'सहजो, जा घट नाम है, सो घट मंगल रूप ।
राम बिना धिक्कार है, सुन्दर धनवँत भूप ॥

कूकर ज्यो भूसत फिरै, तामस मिलवाँ बोल।
घर बाहर पुर रूप है, बुधि रहै डावाँ डोल॥
नीच लोभ जा घट बसै, झूठ कपट सूँ काम।
बौरायो चहुँ दिसि फिरै, 'सहजो' कारन दाम॥
मोह मिरग काया बसै, कैसे उबरै खेत।
जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सू हेत॥
भक्त हेत हरि आइया, पिरथी भार उतारि।
साधन की इच्छा करी, पापी डारे मारि॥
जोगी पावै जोग सूँ, ज्ञानी लहै विचार।
'सहजो' पावै भक्ति सूँ, जोग-प्रेम आधार॥

—:o:—

दयाबाई

सहजोबाई की तरह दयाबाई का भी स्त्री भक्त कवियों मे प्रमुख स्थान है। सहजो की कविता का स्रोत जिस स्थान से फूटा है, वहीं से दयाबाई की भी कविता का स्रोत आगे बढता हुआ दिखाई देता है। दोनों की कविता का उद्गम स्थल एक ही है, और वह है, ससार से विरक्त होकर गुरू के चरणो का ध्यान। दयाबाई भी उन्हीं महात्मा चरणदास जी की शिष्या थीं, जिनकी सहजो बाई थीं। सहजोबाई और दयाबाई दोनों की कविता का एक ही आदर्श है, और दोनो की कविता बहुत कम अन्तर के साथ भक्ति-ससार मे प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है।

दयाबाई की वानियों, पदों और दोहों का अध्ययन करने से यह पता चलता है, कि उनके हृदय मे सांसारिक मनोभाओ की पर्याप्त चोट लगी थी। उनके हृदय मे अधिक पीड़ा थी, और वह पीड़ा थी, ईश्वर-प्रेम की। ईश्वर-प्रेम ने उनके हृदय के तार-तार को झन झना दिया था, और वे उसी की झन

झनाहट को लेकर स्थान-स्थान पर व्याकुलता के राग अलापती थीं। वे ईश्वर प्रेम और उसकी पीडा मे इतनी डूबी हुई दिखाई देती हैं, कि उन्हे उसके आगे ससार की क्या, अपना भी ध्यान नही है। उन्होंने अपनी इस आत्म-विस्मृति का निम्नांकित पंक्तियो मे अच्छा चित्रण किया है:—

दया प्रेम प्रगट्यो तिन्है, तन की तनि न सभार।
हरि रस मे माते फिरं गृह वन कौन विचार॥
पथ प्रेम को अटपटो, कोई न जानत बीर।
कै मन जानत आपनो, कै लागि जेहि पीर॥

यह दयाबाई की एक अपनी अनुभूति है, और इसी अनुभूति को उन्होने एक आदर्श के रूप मे ससार मे उपस्थित कर दिया है। और वास्तव मे वह आदर्श बन भी गई है। आदर्श बन गई है इस लिये, कि वह सच्ची अनुभूति है, ज्ञान-सीमा के सन्निकट की भावना है। वास्तव मे जिनके हृदय मे ईश्वर के प्रेम की पीडा उत्पन्न होती है, और जो हरि-प्रेम का आसव ओठों से लगा लेते हैं, उन्हे समस्त ससार अधिक तुच्छ सा दिखाई देने लगता है। नश्वर और नगण्य ससार मे उन्हे यदि किसी की सत्ता दिखाई देती है, तो अपने प्रियतम की, अपने आराध्य देव की। वे नश्वर जगत से मुह मोड़ कर उसी की गीत गाते हैं, और उसी मे मिल जाने का प्रयत्न करते हैं। यही तो वह प्रयत्न था, जिसने मीरा और सहजो को पागल बना दिया था।

दयाबाई मे ईश्वर के प्रति जहाँ अनन्य प्रेम है वहाँ ससार के प्रति अधिक विराग भी है। यों तो ईश्वर-प्रेमियो का ससार से विरक्त होना एक स्वाभाविक सी बात है। किन्तु दयाबाई के वैराग्य मे एक दार्शनिक भावना है, और वह इसी लिए अधिक सम्मान की वस्तु है। वे ससार से विरक्त बन कर गाते गाते अधिक दार्शनिक हो उठी हैं, और निर्गुण वाद के सन्निकट खडी हुई दिखाई देती है। उनके हृदय मे ज्ञान की अपूर्व ज्योति है, और उन्होंने उसी ज्योति से ससार के बाहर का भी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया है। वे स्वयं कहती हैं:—

ज्ञान रूप को भयो प्रकास।
भयो अविधा तम को नास॥
सूझ पर्यो निज रूप अभेद।
सहजै मिट्यो जीव को खेद॥
जीव-ब्रह्म अन्तर नहिं कोय।
एकै रूप सबै घट सोय॥
जगत विवर्त सूँ न्यारा जान।
परम अद्वैत रूप निर्वान॥
विमल रूप व्यापक सब ठाईं।
अरध, उरध महँ रहत गुसाईं॥
महा सुद्ध साच्छी चिद् रूप।
परमातम प्रभु परम अनूप॥

निराकार निरगुन निरवासी।
आदि निरजन अज अविनासी॥

कितना असीमित भक्ति-ज्ञान है। दयाबाई की यह उक्त कविता ही इस बात को प्रमाणित करती है, कि उन्होंने जगत और जगत की नश्वरता मे 'अमर' रूप होकर रहने वाले ईश्वर के तत्त्व को भली भाँति समझ लिया था। किन्तु दयाबाई की तरह सभी के हृदय मे तो ज्ञान-ज्योति होती नहीं। फिर वे किस प्रकार ससार के कष्टों से विमुक्त होकर 'अमरत्त्व' को प्राप्त कर सकते हैं। दयाबाई ऐसे मनुष्यो के लिये मार्ग भी बताती हैं, और कहती हैं, कि ससार मे साधु और गुरु की सेवा ही सब कुछ है। साधु और गुरू की सेवा से ही ईश्वर प्रसन्न होते है, और मनुष्य सासारिक कष्टो से विमुक्त हो सकता है। निम्नाकित पक्तियो मे देखिये, वे क्या कह रहीं हैं:—

साध रूप हरि आप हैं, पावन परम पुरान।
मेटै दुविधा जीव की, सब का करै कल्यान॥
कलि केवल संसार मे, और न कोउ उपाय।
साध सग हरि नाम विनु, मन की तपन न जाय॥
सतगुरु सम कोउ है नहीं, या जग मे दातार।
देत दान उपदेश सों, करैं जीव भव पार॥
गुरू किरपा बिन होत नहिं, भक्ति भाव विस्तार।
जोग जज्ञ जप तप 'दया' केवल ब्रह्म विचार॥

दयाबाई का जन्म मेवाड के डेहरा नामक स्थान मे हुआ था। ये सहजा की गुरू बहन और महात्मा चरणदास जी की स्वजातीया थी। चरणदास जी का जन्म भी इसी गॉव मे हुआ था। दयाबाई के जन्म सवत् के सम्बन्ध मे लोगों के तरह-तरह के अनुमान है। किसी का कहना है, इनका जन्म सवत् १७५० मे हुआ, और किसी का कथन है, कि सवत् १७५५ मे। कोई कोई दोनों सम्वतो के बीच के किसी सम्बत् को इनका जन्म संवत् बताते है। खोज से यह पता चला है, कि इनका जन्म संवत् १७५० के आस-पास हुआ होगा। इनके गुरू के नाम को छोड़ कर इनके और किसी सम्बन्धी का पता नहीं चलता। ये महात्मा चरणदास जी ही के साथ साथ रहा करती थीं, और उन्हीं के सतसग स इनके हृदय मे वैराग्य का प्रादुर्भाव हुआ। एक गुजराती के लेखक ने इनके सम्बन्ध मे लिखते हुये लिखा है:—"दयाबाई को वाल्यावस्था से ही हरि-प्रेम का चस्का लग गया था। गाँव मे जहॉ कहीं हरि-कीर्तन होता, जहाँ कहीं साधु-सन्तों की मण्डली आती, ये तुरन्त वहॉ पहुँच जाया करतीं और बडे प्रेम से उनकी बाते सुना करती थी। इसी भाँति धीरे-धीरे इनक हृदय म भक्ति और वैराग्य की जड प्रबल हो उठी, और ये अपने गॉव को छोड कर चरणदास जी के साथ दिल्ली मे जाकर रहने लगी।" जो हो, किन्तु यह तो निर्विवाद है, कि चरणदास जी उनके गुरू थे, और ये उनके साथ साथ दिल्ली मे रहती थी। इनके बनाये हुये एक ग्रन्थ

का भी पता चलता है। उसका नाम है, दया-बोध दयाबाई ने सम्वत् १८१८ मे इसका निर्माण किया। इन्होने स्वय इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे लिखा है:—

सम्बत ठारा सै समै, पुनि ठारा गये बीति।
चैत सुदी तिथि सातवीं, भयो ग्रन्थ सुभ रीति॥

प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस ने इनके नाम से एक और पुस्तक प्रकाशित की है। उस पुस्तक का नाम है, 'विनय मालिका। किन्तु दयाबोध और विनय मालिका के पदो मे अधिक अन्तर है। 'दया-बोध' मे दया बाई ने अपने नाम की छाप 'दया' और 'दया कुँवरि' रक्खा है, किन्तु उसमे 'दयादास' एक दूसरा ही नाम मिलता है। सम्भव हो, विनय मालिका मे दयाबाई के भी कुछ पद हो, किन्तु अधिकाश पद दयादास नामक किसी दूसरे भक्त साधु के प्रतीत होते है।

निम्नाकित कविताओ से दया बाई की भक्ति-वैराग्य और प्रेम का परिचय प्राप्त कीजिये·—

[१]

'दया कुवरि' या जक्त मे, नहीं रह्यो फिर कोय।
जैसे बास सराय की, तैसो यह जग होय॥
जैसो मोती ओस को, तैसो यह ससार।
बिनसि जाय छिन एक मे, 'दया' प्रभू उर धार॥
तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल्ह मे तुम चलो, दया होहु हुसियार॥

[२]

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहि होवै ।
गुरु बिनु चौरासी मन जोवै ।।
गुरु बिनु राम भक्ति नहि जागै ।
गुरु बिनु असुभ कर्म नहिं त्यागै ।।
गुरु ही दीन दयाल गोसाईं ।
गुरु सरनै जो कोई जाईं ।।
पलटै करै काग सू हसा ।
मन को मेटत है सब ससा ।।
गुरु है सागर कृपा निधाना ।
गुरु है ब्रह्म रूप भगवाना ।।
हानि लाभ दोउ सम करि जानै ।
हृदै ग्रन्थ नीकी विधि मानै ।।
दै उपदेश करै भ्रम नासा ।
दया देत सुख सागर बासा ।।
गुरु को अहि निशि ध्यान जो करिये ।
विधिवत सेवा मे अनुसरिये ।।
तन मन सू आज्ञा मे रहिये ।
गुरु आज्ञा बिन कछू न करिये ।।

[३]

हरि रस माते जे रहै, तिनको मनो अगाध ।
त्रिभवन की सम्पति त्या तन मन चाहत साध ।।

हँसि गावत रोवत उठत, गिरि गिरि परत अधीर।
पै हरि रस चस को 'दया', सहै कठिन तन पीर ॥
विरह विथा सूँ हूँ विकल, दरसन कारन पीव।
'दया' दया की लहर कर, क्यो तल फावौ जीव ॥
प्रेम-पुंज प्रगटै जहाँ, तहाँ प्रगट हरि होय।
दया दया करि देत है, श्री हरि दरशन सोय ॥

[४]

साध साध सब कोउ कहै, दुर्लभ साधू सेव।
जब संगति है साध की, तब पावे सब भेव ॥
साधू विरला जक्त मे हर्ष सोक ते हीन।
कहत सुनत कूँ बहुत हैं, जन जग आगे दीन ॥
साध संग जग मे बडो, जो करि जानै कोय।
आधो छिन सत संग को, कलमष डारे खोय ॥
कोटि लच्छ व्रत नेम तिथि, साध संग मे होय।
विषम व्याधि सब मिटत है, सान्ति रूप सुख जोय ॥

[५]

मनसा बाचा करि दया, गुरु चरनो चित लाव।
जग समुद्र के तरन कूँ, नाहिन आन उपाय ॥
जे गुरु कूँ वन्दन करै, दया प्रीति के भाव।
आनँद मगन सदा रहै, तिर विधि ताप नसाव ॥

नित प्रति वन्दन कीजिये, गुरु कूँ सीस नवाय ।
दया सुखी कर देत है, हरि स्वरूप दर साय ॥
या जग मे कोउ है नही, गुरु सम दीन दयाल ।
सरना गत कूँ जानि कै, भले करै प्रति पाल ॥

सुन्दरकुंवरि बाई

सुन्दर कुवरि बाई कृष्ण-काव्य के रचयिताओ मे अपना एक साधारण स्थान रखती है। इन्होंने कृष्ण और राधिका के ऊपर अपनी अधिकांश कवितायें लिखी है, और उनमे शृङ्गार की भावना है। शृङ्गार का वर्णन भी बहुत ही साधारण सा है। कही-कही नायक-नायिकाओ का चित्रण चमत्कार-पूर्ण हो गया है। यह सब होते हुए भी यह कहना पडता है, कि बाई जी ने काव्य-रचना की अच्छी प्रतिभा पाई थी। छन्दो के भीतर प्रतिभा की ज्योति झलमलाती हुई भी दिखाई देती है। किन्तु किन्हीं कारणो वश उसका विकास न हो सका और वह अपनी एक चमक दिखा करके ही बुझ गई।

बाई जी का जन्म सवत् १७९१ मे दिल्ली मे हुआ था। इनके पिता का नाम राजसिंह था। राजसिह जी रूपनगर और कृष्णगढ के अधिपति थे। बाई जी का विवाह राघवगढ़ के उत्तराधिकारी बलदेवसिह जी के साथ हुआ था। बाई जी मे बाल्यावस्था से ही कविता के लिए लगन थी। अपनी लगन ही

के कारण इन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियो मे काव्य ग्रन्थो की रचना की है। प्रतिकूल परिस्थितियाँ इस लिये, कि इनके पति देव का जीवन बहुत दिनो तक शत्रुओं के साथ आक्रमणो के कारण अधिक अस्त-व्यस्त-सा रहा है। यदि बाई जी को अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होती तो इसमे सन्देह नही कि इनकी प्रतिभा का अधिक विकास होता और आज यहाँ हमे इनके सम्बन्ध मे कुछ दूसरे ही शब्द लिखने पडते।

बाई जी ने कई पुस्तको की रचना भी की है। इनकी पुस्तकों के नाम ये है :—(१)।रस पुज (२) गोपी महात्म्य, (३) प्रेम सम्पुट, (४) भावना प्रकाश, (५) नेह-विधि रचना, (६) सकेत युगुल (७) रग झर, (८) राम रहस्य, (९) वृन्दावन गोपी महात्म्य, (१०) सार-सग्रह। इननी पुस्तको का निर्माण ही इस बात को प्रमाणित करता है, कि बाई जी ने अच्छी प्रतिभा भाई थी। उनकी इस प्रतिभा को उनकी रचित निम्नांकित कविताओ मे भी देखिये —

[१]

मेरो प्रान-सजीवन राधा।
कब तो बदन सुधाधर दरसै यो अँखियन हरै बाधा॥
ठमकि ठमकि लरिकौही चालन आव सामुहे मेरे।
रस के वचन पियूष पोष के कर गहि बैठहु मेरे॥
रहसि रग की भरी उमगति ले चल सङ्ग लगाय।
निभृत नवल निकुज विनोदन विलसत सुख-दरसाय॥

रग महल सकेत जुगल कै टहलिन करत सहेली ।
आज्ञा लहौ रहौ तहँ तट पर बोलत प्रेम पहेली ॥
मन-मजरी जु कीन्हो किंकर अपनावहु किन वेग ॥
सुन्दर कुवरि स्वामिनी राधा हित को हरौ उद्वेग ॥

[२]

कहत श्याम मेरे नही तुम बिन कोऊ आन ।
प्रानहु है प्यारी प्रिया काहि करत हौ मान ॥
काहि करत हौ मान चलहु पिय सङ्ग विहारौ ।
राधा राधा मत्र नाम वे रटत निहारौ ॥
नायक नन्द कुमार सकल सुभ गुन के सागर ।
तिन सौ मान निवार बहुत बिनवत सुनि नागर ॥

[२]

श्री वृषभानु-सुता मन-मोहन जीवन प्रान अधार पियारी ।
चन्द्र मुखी सुनि हारन आतुर चातुर चित्र चकोर बिहारी ॥
जा पद-पकज के अलि लोचन श्याम के लोभित सोभित भारी ।
हौं बलि हारी सदा पग पै नव नह नवेली सदा मतवारी ॥

प्रतापकुंवरि बाई

प्रतापकुवरि बाई मे ज्ञान और वैराग्य की उच्च भावनाये है। आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म विवेचना के साथ साथ जगत की नश्वरता का चित्र भी इन्होने अच्छा खीचा है। सत्य, और असत्य, नश्वरता और अमरता, दोनो का इनका एक साथ चित्रण अत्यन्त सराहनीय है। अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल पर इन्होंने उन दिनो जोधपुर मे भक्ति का डका पीट दिया था। यद्यपि ये मीरा की भॉति विरागिनी बन कर जगलो मे न भटकी, तथापि इनके हृदय मे मीरा से कम वैराग्य न था। ये अपने गार्हस्थ जीवन की झॉकी से ही वैराग्य के सूक्ष्म तत्वो को भली भॉति परखतीं और अपने आराध्यदेव मे मिल जाने का प्रयत्न करती थीं। इनकी उपासना मीरा के 'साकार' और 'निराकार' की भॉति किसी अदृश्य लोक मे न जा सकी थी। इनका प्रियतम, इनका आराध्यदेव इनके गार्हस्थ जीवन ही मे विद्यमान था। ये उसी की पूजा करतीं, और उसी से जगत

श्रीरामचन्द्र जी इनके आराध्यदेव थे, किन्तु ये उनका दर्शन अपने सांसारिक पति मे ही करती थी। देखिये, वे स्वय कहती हैं:—

पति समान नहीं दूजा देवा।
ताते पति की कीजै सेवा ॥
पति परमातम एक समाना।
गावै सब ही वेद-पुराना ॥
धरम अनक कहे जग माही।
तिय के पतिव्रत सम कछु नाही ॥

सासारिक पति मे अखण्ड ज्योति का दर्शन करने के साथ ही साथ इनके हृदय मे ससार के प्रति विराग भा अधिक था। इन्होने अपने उस विरागी हृदय को निम्नांकित पक्तियो मे बडे अच्छे ढग से प्रगट किया है —

होरि या रग खेलन आओ।
इला पिगला सुख मणि नारी ता सँग खेल खिलाओ।
सुरत पिचकारी चलाओ।
कॉचो रग जगत को छॉडो, सॉचो रग लगाओ।
बाहर भूल कबौ मत जावा, काया-नगर बसाओ ॥
तबै निरभै पद पाओ।
पॉचौ उलट धरे घर भीतर अनहद नाद बजाओ।
सब बकवाद दूर तज दीजै, ज्ञान-गीत नित गाओ ॥
पिया के मन तब ही भाओ।

तीन ताप तीन गुण त्यागो समा मोक नसाओ।
कहै प्रताप कुंवरि हित चित मो फेर जनम नहिं पाओ॥
जोत मे जोत मिलाओ।

इनकी उक्त पक्तियो से पता चलता है, कि ये अपनी इस सासारिक आसक्ति मे कितन ऊँचे वैराग्य का दर्शन करती थी। ये अपने कर्त्तव्य की इस झाँकी से ही, उसी परब्रह्म परमात्मा को देखती थी, जिसे देखने के लिये कबीर ने 'निराकार' की झाँकी तैयार की थी। इनकी समस्त कविताओ मे इनके इसी जीवन की छाप है। कविता की पक्तियो म भी ये ईश्वर के साकार और निराकार रूप को पति मे ही खोजती हुई दिखाई देती है। इनको दृष्टि मे, इनका पति, ईश्वर के सगुण और निर्गुणवाद से भी अधिक ऊँचा है। इन्होने अपनी इस आन्तरिक विशुद्ध भावना का बडी ही सफलता के साथ चित्रण किया है।

इनका जन्म सवत् १८७४ के लगभग जोधपुर रियासत के जाखण नामक गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम गोयन्ददास जी था। गोयन्द-दास जी भाटिया वशी क्षत्री थे। बाल्यावस्था मे ही प्रताप कुंवरि बाई का प्रतिभा का परिचय मिलने लगा था। बाई जी जब कुछ सयानी हुई, तब इनका विवाह मारवाड के महाराज मानसिंह के साथ हो गया। ये अपने पति को ईश्वर के तुल्य समझती थीं, और बडी ही भक्ति-भावना के साथ अपना जीवन व्यतीत करती थीं।

सम्वत् १९४३ मे इनका देहावसान हो गया। इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी है, जिनके नाम ये है:–१ ज्ञान प्रकाश, २ ज्ञान सागर, ३ प्रताप पचीसी, ४ प्रेम सागर, रामचन्द्र नाम महिमा ६ राम गुण सागर, ७ रघुवर स्नेह लीला, ८ रघुवर जी के कीर्तन, ९ भजन पद हरिजस, १० हरिजस गायन, ११ श्रीरामचन्द्र विनय, १२ प्रताप विनय, १३ राम प्रेम सुख सागर, १४ राम सुयश पच्चीसी.।

निम्नांकित कविताओं से बाई जी की भक्ति और उनकी प्रतिभा का अच्छा परिचय प्राप्त होता है —

[१]

होरी खेलन की सत भारी।
नर-तन पाय अरे भज हरि को मास एक दिन चारी।
अरे अब चेत अनारी।
ज्ञान-गुलाल अबीर प्रेम करि, प्रीत तणी पिचकारी।
लास उसास राम रँग भर-भर, सुरत सरीरी नारी
खेल इन संग रचा री।
उलटो खेल सकल जग खेलै, उलटो खेलै खिलारी।
सत गुर सीख धार सिर ऊपर सत सगत चल सारी।
भरम सब दूर गुमारी।
ध्रुव प्रहलाद विभीषण खेले, मीरा करमा नारी
कहै प्रताप कुवरि इमि खेलै सो नहि आवै हारी।
सीख सुन लीजै अनारी।

[२]

धर ध्यान रटो रघुवीर सदा,
　　धनुधारी को ध्यान हिये धर रे ।
पर पीर मे जाय कै वेग परौ,
　　कर ते सुभ सुकृत को कर रे ।
तर रे भवसागर को भजि कै,
　　तजि कै अघ-औगुण ते डर रे ।
परताप कुवारि कहै पद पकज,
　　पाव घरी मत बीसर रे ।

[३]

अवधपुरी घुमडि घटा रही छाय ।
चलत सुमन्द पवन पुरवाई नभ घन घोर मचाय ॥
दादुर मोर पपीहा बोलत दामिनि दमकि दुराय ।
भूमि निकुज सघन तरुवर मे लता रही लिपटाय ॥
सरजू उमगत लेत हिलोरै , निरखत सिय रघुराय ।
कहत प्रतापकुवरि हरि ऊपर बार बार बलि जाव ॥

[४]

आस तो काहू की नाहि मिटी,
　　जग मे भये रावण से बड जोधा ।
साँवत सूर-सुयोधन से,
　　बल से नल से रत वादि विरोधा ॥

केते भये नहि जाय बखानत,
जूझ मुये सब ही करि क्रोधा ।
आस मिटै परताप कहै,
हरिनाम जपेर निचागत बोधा ॥

चन्द्रकला

चन्द्रकला की कविता का प्रमुख विषय कृष्ण काव्य है। कृष्ण और राधिका का नायक-नायिका के रूप मे इन्होने चित्रण किया है। किन्तु इनके चित्रण मे पूर्ववर्ती कवियो की भाँति सृङ्गार का अधिक पुट नही है। इनका सलज्ज नारी हृदय सृङ्गार वर्णन मे एक सीमा ही के भीतर रह जाता है। शृङ्गार का वर्णन करते करते इनमे एक प्रकार का सकोच-सा जागृत हो जाता है, और ये वही रुक जाती है। शृङ्गार को प्रस्फुटित करने के लिये इन्होने जिन उक्तियो और उपमाओ का आश्रय लिया है, वे चमत्कार-पूर्ण होने के साथ ही साथ नवीन है। निम्नाकित पक्तियो मे इनकी नवीन और चमत्कारिक उक्तियाँ देखिये·—

नेकौ एक केश की न समता सुकेशील है,
        नैनन के आगे लागे कमल रूमाल ची।
तिल सी तिलोत्तमा हू रति हू रती सी लागे,
        सनमुख ठाढ रहै लाल हित लालची ॥

'चन्द्रकला' दान आगे दीन कल्प बृक्ष लागे,
वैभव के आगे लागे इन्द्र हू कुदाल ची ।
धन्य धन्य राधे बृजभान की दुलारी तोहि,
जाके रूप आगे लगे चन्द्रमा मसाल ची ॥

चन्द्रकला मे प्रतिभा है, । उक्ति का चमत्कार है, और है भावो को व्यञ्जित करने की शक्ति, चमत्कार के साथ ही साथ माधुर्य की भी कमी नही है । सुगठित और सुन्दर शब्द-योजना ने इनकी कविता को हृदय स्पर्शिता का गुण प्रदान कर दिया है ।

इनका जन्म सवत् १९२३ क आस पास हुआ था । ये बूँदी के कवि और दीवान कविराज राव गुलाब सिंह की दासी की पुत्री थी । एक स्थान पर चन्द्रकला ने अपने इस परिचय को प्रगट करते हुए कहा है --

बरस पच दस की वय मेरी ।
कवि गुलाब की हूँ मै चेरी ॥
बालहि ते कवि सगति पाई ।
तात तुक जोरन मोहि आई ॥

चन्द्रकला के इस आत्म परिचय से यह प्रगट होता है, कि जीवन के प्रारभ काल मे ही उनमे कवित्त्व शक्ति जागृत हो उठी थी । ये अपने तत्कालीन पत्रो मे समस्या पूर्तियाँ करके भेजा करती थी । इनकी समस्या पूर्तियाँ बडी ओजस्विनी और जोर दार हुआ करती थीं । इन्हीं दिनो अवध के राजा प्रताप बहादुर सिह जी के राज दरबार मे बल्देव प्रसाद अवस्थी नाम के एक

कवि रहते थे। इनकी भी समस्या पूर्तियाँ पत्रों मे छपा करती थीं। इनकी समस्या पूर्तियो का चन्द्रकला के ऊपर अधिक प्रभाव पडा, और उन्होंने इनकी कवित्त्व-शक्ति पर विमुग्ध होकर इन्हे बूदी बुलाया। निमत्रण के लिये उन्होने जो पत्र भेजा था, उसमे एक सवैया छद भी था, जो इस प्रकार है:—

दीन दयाल दया कै मिलौ,
दरसे बिनु बीतत है समै सोचन।
सुद्ध सतोगुण ही के सने ते,
विसकित सूल सनेह सकोचन॥
तोरि दियो तर धीर-कगार के,
ह्वै सरिता मनो वारि विमोचन।
चन्द्रकला के बने बलदेव जी,
बावरे से महा लालची लोचन॥

चन्द्रकला के निमत्रण पर बलदेव जी बूदी तो न जा सके किन्तु उन्होने चन्द्रकला की प्रशसा मे चन्द्रकला नाम की एक पुस्तक लिख डाली। उस पुस्तक मे उन्होने चन्द्रकला की अन्यान्य बातो की प्रशसा करके साथ ही साथ उसकी कवित्त्व शक्ति की भी अधिक प्रशसा की है।

निम्नाकित कविताओ मे चन्द्रकला की प्रतिभा को देखिये.—

[१]

बैठे है गुपाल लाल प्यारी बर बालन मे,
करत कलोल महा मोद मन भरिगे।

ताही समै आती राधिका को दूर ही ते देखि,
सौतिन के सकल गुमान गुन जारिगे ॥
'चन्द्रकला' सारस से तिरछी चितौनि वारे,
नैन अनियारे नैकु पी की ओर ढारिगे ।
नेह नहे नायक के ऊपर ततच्छन ही,
तीच्छन मनो भव के पाँचों बान झारिगे ॥

[२]

बिन अपराध मन मोहन को दोष थापि,
काहे मन मान धारि प्यारी दुख पावै है ।
चलि री निकुंज माहिं मिलि री पिया सो बेगि,
मन बच काम लाय तो ही धरि ध्यावै है ॥
'चन्द्रकला' तेरे ही सनेह सने एक पाय,
ठाढे ह्वै जमुना तीर पीर सरसावै है ।
लै लै नाम तेरो ही बखाने तोहि प्रान प्यारी,
सुनि री गुपाल लाल बाँसुरी बजावै है ।

[३]

ध्यान धरे तुम्हरो निसि बासर नाम तुम्हार [illegible] बिसरै ना ।
गावत है गुन प्रेम-पगा मन जोवत है छिन [illegible] टरै ना ॥
'चन्द्रकला' वृषभानु-सुता अति छीन भई तन [illegible] परै ना ।
वेगि चलो न बिलम्ब करौ अति व्याकुल है वह [illegible] परै ना ॥

रघुराजकुंवरि

अब तक राधा-कृष्ण की जो धारा प्रवाहित होती चली आ रही थी, और जिसने अनेक कवि और कवियित्रियो के हृदय को आप्लायित कर दिया था, रघुराजकुवरि उससे कुछ दूर दिखाई देती है। इन्होंने कृष्ण काव्य की धारा मे न बह कर राम काव्य की सृष्टि की है। सीता और श्रीरामचन्द्र जी ही इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। इनकी अधिकांश कवितायें वर्णनात्मक है। इन्होंने सीता और श्रीरामचन्द्र जी की अंग-छवि को अलौकिक और चमत्कार-पूर्ण उपमाओं के द्वारा व्यंजित करने का प्रयत्न किया है। जानकी जी के नेत्रों का वर्णन करते हुये रघुराजकुवरि कहती हैं:—

मृग-मनहारे, मीन खंजन निहारि वारे,
प्यारे रतनारे कजरारे अनियारे हैं।
पैन सर वारे कारी भृकुटि धनुष वारे,
सुठि सुकुमारे शोभा सुभग सुढारे हैं॥



रघुराज कुँवरि (रामप्रिया)



रघुराज कुँवरि (रामप्रिया)

मानों मणि मंडित शिखर पै मयंक तापै,
मंजु दिनकर प्रात प्राची सो उदै भयो ॥

[२]

सिय-मुख चन्द त्याग दूजो चंद मंद कहाँ
कौन गुण जांनि समता मे अवलोकों मैं ।
मुख अकलंकी सकलंकी तू प्रसिद्ध जग ।
कहि समझाऊ कैसे वाको जाय रोकों मैं ॥
दिवा द्युति-हीन घन समय मलीन-खीन,
'राम-प्रिया' जानै तोहिं जन सब लोकों मैं ॥
लली मुख लालिमा गुलाल सो लखत जैसे,
तैसी दरसावो तो सराहौ तब तोकों मैं ॥

[३]

किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन के,
विकसे प्रसूनन मलिन्द छवि धावै री ।
बेली बाग बीथिन बसंत की बहारैं देखि,
'राम प्रिया' सियाराम सुख उपजावै री ॥
जनक किशोरी युग करते गुलाल रोरी,
कीन्हे वर जोरी प्यारे मुख पै लगावै री ।
मानो रूप सर ते निकसि अरविन्द युग,
निकसि मयंक मकरन्द धरि लावै री ॥

जुगलप्रिया

श्री जुगलप्रिया के आराध्य देव श्री कृष्ण जी थे, अत इनकी रचनाओ के प्रमुख पात्र भी श्री कृष्ण जी ही है। किन्तु ये श्री कृष्ण को एक साधारण नायक न समझ कर उनमे ईश्वर की ज्योति का दर्शन करती थी और उसी भावना से इन्होंने अपनी कविताओं मे उनका चित्रण भी किया है। इनके हृदय में श्री कृष्ण जी के लिये प्रेम है, भक्ति है, पीडा है, और है, असीमित भावनाओं को लिए हुये। इसी लिये इनकी रचनाये तत्कालीन कवियित्रियो की रचनाओ से अधिक ऊंची दिखाई देती है। इन्होंने जहाँ जिस विषय का चित्रण किया है, वहाँ एक व्यापक सिद्धान्त और आदर्श पाया जाता है। कवि जीवन की यही श्रेष्ठता भी है। जुगल प्रिया इस श्रेष्ठता के अधिक सानिकट पहुचती हुई दिखाई देती हैं। देखिये —

यह तन एक दिन होय जु छारा।
नाम निशान न रहि हैं रचहु भूलि जाय गो सब ससारा।
काल घरी पूरी जब ह्वै है लगे न छिन छाँडत भ्रम जारा।

या माया नटिनी के बस मे भूलि गयो सुख- सिन्धु अपारा ।
जुगल प्रिया अजहुँ किन चेतन मिलि हैं प्रीतम प्यारा ।।

जुगल प्रिया भक्त थीं। इस लिये ईश्वर-भक्ति के अतिरिक्त इन का ध्यान ही किसी ओर न गया। किन्तु इनका हृदय विशाल था, और उस विशाल हृदय मे उच्च भावनाये थीं। ससार से विरक्त होकर जहाँ इन्होने अपनी भक्ति की दृढता प्रगट की है, वहाँ अपने आप इनकी उच्च भावनाये व्यजित हो उठी है। दखिये, नीचे के पद मे जुगल प्रिया की उच्च भावना कितनी प्रस्फुटित हुई है —

माई मोको जुगल नाम निधि भाई ।
सुख सम्पदा जगत की झूठी आई सग न जाई ।
लोभी को धन काम न आवे अतकाल दुख दाई ।
जो जोरे धन अधम करम ते सर्वस चलै नसाई ।।
कुल के धरम कहा लै कीजै भक्ति न मन मे आई ।
जुगल प्रिया सब तजौ भजौ हरि चरन कमल मन लाई

जुगल प्रिया जी ने श्रृङ्गार रस मे भी कविताये लिखी है। किन्तु इनके श्रृङ्गार इस मे भी इनकी पवित्रता है, उच्च मानवी भावना है। इनका श्रृङ्गार रस बडा ही सयत और बडा ही गभीर है। ज्ञात ही नहीं होता, कि वह श्रृङ्गार रस है। कहने का तात्पर्य यह है, कि उसमे भक्ति-वेदना का इतना मिश्रण है, कि मन उसे छोडकर श्रृङ्गार की ओर जाता ही नहीं। श्रृङ्गार रस हो, या भक्ति, इन्होंने जिस किसी भी रस मे अपने भावो को उतारा है,

उसका हृदय पर अधिक प्रभाव पडता है। इनकी समस्त रचनाये हृदय को छूतीं और प्राणों मे एक द्वन्द उत्पन्न करती हैं।

जुगल प्रिया का जन्म सवत् १९७८ के लगभग बुन्देल खण्ड के ओरछा राज्य वश मे हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीमान महेन्द्र प्रताप सिह जू देव और माता का नाम श्री मती वृषभानु कुवरि था। इनकी माता स्वय कृष्ण भक्त थीं और उन्हीं के जीवन की छाप जुगल प्रिया के भी जीवन पर पडी। और ये भी श्री कृष्ण जी को अपना आराध्य देव मान बैठीं। छतरपुर राज्य के नरेश श्रीमान् विश्वनाथ सिंह जू देव के साथ इनका विवाह हुआ था। ये बडी सहृदय थीं। साधु-सन्तों का सम्मान करना अपना धर्म समझती थी। सम्वत् १९७८ के चैत के महीने मे इनका देहावसान होगया।

देखिये, नीचे की कविताओ मे उनकी भक्ति किस प्रकार प्रस्फुटित हुई हैं·—

[१]

मन तुम मलिनता तजि देहु।
सरन गहु गोविन्द की अब करत कासो नेहु॥
कौन अपने आप काके परे माया सेहु।
आज दिन लौ कहा पायो कहा पैहौ खेहु॥
विपिन वृन्दा वास करु जो सब सुखनि को गेहु।
नाम मुख मे ध्यान हिय मे नैन दरसन लेहु॥

छाँडि कपट कलक जग मे सार साँचो एहु।
'जुगल प्रिया' बन चित्त चातक स्याम स्वाँती मेहु ॥

[२]

दृग तुम चपलता तजि देहु।
गु जरहु चरनार विन्दनि होय मधुप सनेहु ॥
दसहुँ दिसि जित तित फिरहु किन सकल जग रस लेहु।
पै न मिलि है अमित सुख कहु जो मिलै या गेहु।
गहौ प्रीति प्रतीति दृढ ज्यों रटत चातक मेहु।
बनो चारु चकोर पिय मुख-चन्द छवि रस एहु ॥

[३]

नाथ अनाथन की सब जानै।
ठाढी द्वार पुकार करति हौं श्रवन सुनत नहिं कहा रिसानै।
की बहु खोट जानि जिय मेरी की कछु स्वारथ हित अरगानै ॥
दीन बन्धु मनसा के दाता गुन औगुन कैधो मन आनै।
आप एक हम पतित अनेकन यही देखि का मन सकुचानै ॥
झूँठो अपनो नाम धरायो समझ रहे हैं हमहि सयानै।
तजो टेक मनमोहन मेरो 'जुगल प्रिया' दीजै रस दानै ॥

[४]

सखी मेरी नैनन नींद दुरी।
पिय सो नहि मेरो बस कछु री।
तलफि तलफि यों ही निसि बीतति नीर बिना मछुरी ॥

उडि उडि जात प्रान पंछी तहँ बजत जहाँ बसुरी ।
'जुगल प्रिया' पिया कैसे पाऊ प्रगट सुप्रीति जुरी ॥

[५]

जुगल छवि कब नैनन मे आवै ।
मोर मुकुट की लटक चन्द्रिका सटकारो लट भावै ॥
गर गु जा गजरा फूलन के फूल से बैन सुनावै ।
नील दुकूल पीत पट भूषण मन भावन दरसावै ॥
कटि किंकिनि कंकन कर कमलनि वर्चानित मधुर छवि छावै ।
'जुगल प्रिया' पद-पदुम परसि कै अनत नहीं सचुपावै ॥

साईं

साई की रचनाओं मे एक आदर्श है, नैतिकता है। आदर्श और नैतिकता ही इनकी कविता की जान है। ये नैतिकता और आदर्श के मच पर खडी होकर ससार को उपदेश देती हुई दिखाई देती है। इनका नैतिक उपदेश किसी एक जाति के लिये नहीं, किसी एक देश के लिये नही, बल्कि समस्त विश्व के मानव समुदाय के लिये है। इन्होंने अपनी सीधी-सादी भाषा मे जीवन के जो नैतिक आदर्श सामने रक्खे हैं, वे अधिक व्यवहारिक और और नपे-तुले है। साई की कविता इस दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ कही जा सकती है। इनकी रचनाओ मे भले ही उच्च कल्पना का अभाव हो, किन्तु व्यवहारिकता और उपयोगिता की दृष्टि से इनकी रचनाये बहुत आगे बढी हुई दिखाई देती है। इनकी यह सब से बडी विशेषता है।

साई हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि गिरिधरराय की स्त्री थीं। इनके जन्म सवत् का ठीक ठीक पता नहीं चलता। किन्तु कुछ विद्वानो के कथनानुसार इनका जन सवत् १७७० के आस पास

माना जा सकता है। इन्होने 'कुण्डलिया' मे अपनी सभी रचनाये वद्ध की है। इनके पति गिरिधरराय कुण्डलिया के एक बहुत प्रसिद्ध कवि हो चुके है। उन्ही का प्रभाव इनकी रचनाओं पर भी पडा है। गिरिधर की तरह इनकी कुण्डलियो का भी अधिक प्रचार है। इन्होने कहीं कही अपनी रचनाओ मे उर्दू और फारसी के शब्दो का भी प्रयोग किया है।

उदाहरण के लिये हम यहाँ इनकी कुछ कुण्डलियाँ उद्धृत करते हैं:—

[१]

साई वैर न कीजिये, गुरु पण्डित कवि यार।
बेटा बनिता पौरिया, यज्ञ करावन हार॥
यज्ञ करावन हार, राज मत्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य, आप की तपै रसोई॥
कह गिरिधर कविराय युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिये बनि आवे साईं॥

[२]

साई ऐसे पुत्र ते वाझ रहे बरु नारि।
बिगरे बेटा बाप से जाय रहे ससुरारि।
जाय रहे ससुरारि नारि के हाथ विकाने।
कुल के धर्म नसाय और परिवार नसाने॥
कह गिरिधर कविराय मातु झखे वहि ठाई।
अस पुत्रनि नहिं होय बाँझ रहतिउँ बरु साई॥

[३]

साईं सब ससार मे मतलब को व्यवहार ।
जब लगि पैसा गाँठ मे तब लगि ताको यार ॥
तब लगि ताको यार यार सँग ही सँग डोलै ।
पैसा रहा न पास यार मुख ते नहिं बोलै ॥
कह गिरिधर कविराय जगत यह लेखा भाई ।
बिना बेगरजी प्रीति यार विरला कोई साईं ॥

[४]

साईं अपने चित्त की भूल न कहिये कोय ।
तब लगि मन मे राखिये, जब लगि काज न होय ॥
जब लगि काज न होय, भूलि कबहूँ नहि कहिये ।
दुर्जन तातो होय आप सियरे ह्वै रहिये ॥
कह गिरिधर कविराय बात चतुरन के ताईं ।
करतूती कहि देत आप कहिये नहिं साईं ॥

[५]

साईं समय न चूकिये यथा शक्ति सनमान ।
को जानै को आइ है तेरी पौरि प्रमान ॥
तेरी पौरि प्रमान समय असमय तकि आवै ।
ताको तू मन खोलि अक भरि कठ लगावै ॥
कह गिरि कविराय सबै यामे सधि जाई ।
शीतल जल फल फूल समय जनि चूकौ साईं ॥

प्रतापबाला

प्रतापबाला की कविता भक्ति भाव प्रधान है। इनकी कविता के नायक श्री कृष्ण जी है। श्री कृष्ण जी के प्रति इनके हृदय मे प्रेम का एक पीडा है, और उस पीडा को इन्होने अपनी अपनी रचनाओ मे सफलता के साथ व्यक्त किया है। इनकी सीधी-सादी रचनाओ मे भी इनके हृदय की गहरी भक्ति छिपी हुई है। निम्नाकित पक्तियो मे इनकी भक्ति की दृढता देखिये'—

सखी री चतुर श्याम सुन्दर सो,
मोरी लगन लगी री।
लाख कहो अब एक न मानूँ
उनके प्रीति पगी री।

साधारणत: इनकी रचनाये अच्छी है, और उनमे इनकी भक्ति-सलग्नता दिखाई देनी (।

इनका जन्म सम्बत् १८९१ मे गुजरात प्रान्त के जामनगर राज्य मे हुआ था। इनके पिता का नाम रिडमिल जी था। इनका विवाह जोधपुर के महाराज तख़्त सिंह जी के साथ हुआ था।

ये बडी दयालु और भक्त थी। इनका अधिकाश समय पूजा-पाठ और हरि-चर्चा मे ही व्यतीत होता था। हम यहा इनके कुछ भक्ति-पूर्ण पदों को उद्धृत कर रहे हैं —

[१]

प्रीतम हमारो प्यारो श्याम गिरिधारी हैं।
मोहन अनाथ नाथ, सतन के डोलै साथ,
वेद गुण गावे गाथ, गोकुल विहारी है।
कमल विशाल नैन, निपट रसीले बैन,
दीनन को सुख दैन, चार भुजा धारी है।
केशव कृपा-निधान, वाही सो हमारो ध्यान,
तन मन वारूँ प्रान, जीवन मुरारी है।
सुमिरूँ मैं सांझ भोर, बार बार-हाथ जोर,
कहत प्रतापकोर, जाम की दुलारी है।

[२]

भजु मन नन्द-नन्दन गिरिधारी।
सुख सागर करुणा को आगर भक्त-वछल बनवारी।
मीरा करमा कुबरी, सबरी, तारी गौतम नारी॥
वेद पुरानन मे जस गायो, ध्याये होवत प्यारी।
जाम सुता को श्याम चतुर भुज लेगा खबर हमारी॥

[३]

मो मन परीं है यह बान।
चतुर भुज के चरण परि हरि न चहूँ कछु आन॥

कमल नैन विशाल सुन्दर मन्द मुख मुसुकान ।
सुभग मुकुट सुहावनो सिर लसै कुण्डल कान ॥
प्रगट भाल विसाल राजत भौंह मनहु कमान ।
अंग अंग अनंग की छवि, पीत पट फहरान ॥
कृष्ण रूप अनूप को मैं, धरूँ निशि दिन ध्यान ।
जाम सुता परताप के भुज वार जीवन-प्रान ॥

[४]

चतुर भुज झूलत श्याम हिंडोरे ।
कंचन खम्भ लगे मणि-माणिक रेसम की रँग डोरी ।
उमड़ि-घुमडि घन बरसत चहु दिसि, नदिया लेत हिलोरे ।
हरि हरि भूमि-लता लपटाई बोलत कोकिल मोरे ॥
बाजत बीन पखावज बन्सी गान होत चहुँ ओरे ।
जाम सुता छवि निरखि अनोखी वारूँ काम किरोरे ॥

—:o:—

रानी रघुवंश कुमारी

रानी रघुबश कुमारी की रचनाये भक्ति-भावना से ओतप्रोत हैं। ये जहाँ ईश्वर की उपासना करती है, वहाँ पति की उपासना को भी अधिक महत्व देती है। वास्तव मे बात तो यह है, कि ये अपने सासारिक पति-भक्ति की ही झाँकी से ईश्वर का दर्शन करती है। इनकी दृष्टि मे पति ही सर्वस्व है, और उसकी उपासना करके ससार मे सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। निम्नांकित पक्तियो मे इन्होने अपनी पति-भक्ति भावना का कितना सुन्दर चित्रण किया है:-

पग दाबे ते जीवन-मुक्ति लही।
विष्णु पदी सम पति पद-पकज छुवत परम पद होवे सही।
निरखि निरखि मुख अति सुख पावत प्रेम समुद के धार बही।
रिद्धी सिद्धि सकल सुख देवै सो लक्ष्मी पद हरि के गही।
जहाँ पति-प्रीति तहाँ सुख सरबस यही बात सुनि साँच कही॥

एक प्रकार से पति-भक्ति का वर्णन इन्होने सीमित सा कर दिया है। इनकी कविता सीधी-सादी है, किन्तु उसमे इनका

पति-भक्ति से भरा हुआ हृदय खूब छलकता है। और यही उनकी कविता की सबसे बडी विशेषता है। इन्होंने जो कुछ लिखा है, हृदय के साथ लिखा है। इसी लिये इनकी समस्त रचनायें हृदय-स्पर्शिनी भी हैं।

इनका जन्म सम्बत १९२५ में भगवान पुर के राजा श्रीसूर्य भानु सिंह जी के यहाँ हुआ। बाल्यावस्था ही मे कविता के प्रति इनके हृदय मे प्रेम उत्पन हो गया था। पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे आपका विवाह दियरा राज्य के स्वत्त्वाधिकारी श्री रुद्र प्रताप साही से हुआ। आपने कई पुस्तके भी लिखी हैं, जिनमे तीन प्रकाशित भी हो चुकी है।

आपकी निम्नांकित कविताओं से आपकी पति-भक्ति का अच्छा परिचय मिलता हैं:—

[१]

पिय के पद कचन-राती।
विष्णु विरचि सभु सम पति मे छिन-छिन प्रेम लगाती।
तन मन बचन छाँडि छल भामिनि पति सेवति बहु भांती॥
कबहुँ नहि प्रीति सुनाती।
पिय के पद कचन राती।
दासी सम सेवति जननो सम खान पान सब लाती
सखि सम केलि करति निसि वासर भगिनी सम समझाती॥
बन्धु सम सग सँगाती।
प्रिय के०॥

प्रिय पति-विरह अमर पुरहू मे रहति सदा अकुलातीं।
पति सँग सघन विपिन को रहिबो सेवत रस मदमाती ॥
हृदय मानहिं बहु भाँती।
पिय के० ॥

नाहिन दूरि रहति नहि पर घर एकाकिन कहिं जाती।
मूँदति नैन ध्यान उर आनति गुनवति पति गुन गाती॥
नहि मन मोद समाती।
पिय के पद कचन राती॥

[२]

पिय चलती बेरियाँ, कछु न कहे समझाय।
तन दुख मन दुख नैन दुख हिय मे दुख की खान ॥
मानो कबहूं ना रही, वह सुख से पहचान।
मन मे बालम अस रही, जनम न छोडति पाय।
बिछुडन लिखा लिलार मे, तासों कहा बसाय ॥
बालम बिछुडन कठिन है, करक करेजे हाय।
तीर लगे निकसे नहीं, जब लौ प्रान न जाय ॥
जगन्नाथ के सिन्धु मे, डोंगी की गति होय।
तास गति पिय के बिरह मे, हाय हमारी होय ॥

[३]

पहिले पै ठगोरी ठगो हमको फिर लाज के बन्धन छोरि दियो।
बल बुद्धि हर्‌यो निज बातन ते अबला अति जान सताइ लियो ॥

निज सीधे चितैबे की साध रही बिरहानल दाढ लगाय दियो।
सब बातन मे पिय बीर बनो एक प्रीति मे दाँव चली न हियो॥

[४]

फिरै चारिहु धाम करै ब्रत कोटि कहा बहु तीरथ तोय पिये ते।
जप होम करै अनगंत कछू न सरै नित गग नहान किये ते॥
कहा धेनु को दान सहस्रन बार तुला गज हेम करोर दिये ते।
'रघुवश कुमारी' वृथा सब है जब लौ पति सेवै न नारि हियते॥

आपने अन्यान्य विषयों पर भी कुछ कविताये लिखी हैं। देखिये:—

[५]

खस के वितान पै गुलाब जल फुइयाँ फुइयां,
बीजुली के पखे निसि बासर फिरै करै।
चन्दन कपूर चोवा चम्पा औ चमेली जुही,
आम बौरि मोगरा के इतर झरै परै॥
रग भरे सग तरे काबुली अनार मीठे,
पौढे जल केवडा के डब्बे मे भरै तरै।
जेठ को प्रभाव तेज तेहू पै सताये आप,
स्वेतन की बूँदे मुख सी लरै परै॥

[६]

कहत पुकार कोइलिया हे ऋतु राज।
न्याय-दृष्टि से देखहु विपिन समाज।

सोना सम्पति काज त्यागि सब काज।
भये उदासी बिरिया बिसरी लाज ॥
ध्यान करहु इत अब सुधि कस नहिं लेत।
तीछन बहत बयरिया करत अचेत ॥

सरस्वती देवी

हिन्दी की प्राचीन कवियित्रियों मे श्रीमती सरस्वती देवी का एक विशेष स्थान है। इनकी रचनाओ मे एक आदर्श है। और वह आदर्श है, भारत की एक प्राचीन नारी का। यद्यपि ये उच्च कल्पना के साथ काव्य जगत मे प्रवेश करती हुई नही दिखाई देतीं किन्तु इनकी रचनाओ में ओज है, माधुर्य है, और है प्रर्याप्त सरसता। इनकी कविताओं के सम्बन्ध में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि प० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय कहते हैं.–सरस्वता देवी जी सहृदया हैं, और सरस रचनाये करती है। इनकी रचना अत्यन्त मधुर और हृदय-ग्राहिणी है। इनमे कविता सम्बन्धी जो गुण है, वे आदरणीय है।"

सरस्वती देवी की रचनाओ मे उनके जीवन की छाप है। उनका हृदय भारत के प्राचीन नारी-आदर्श से गौरवान्वित है। वे जब इस नवीन युग मे भारत की स्त्रियों को नवीन प्रवाह मे बहती हुई देखती हैं, तब उनका कवि हृदय तिलमिला उठता है, और वे उपदेशिका बन कर स्त्रियो को उपदेश देने

लगती है। इनकी अधिकाश रचनाओं मे इनकी यही सुधारवादी भावना है, इस भावना से दूर हट कर इन्होंने जो कवितायें लिखी है, इसमे सन्देह नही, कि उनमे अधिक आकर्षण है। इनकी शृ गार रस की कविता देखियेः—

नैन कजरारे कोरवारे धनु-भौह तान,
मारत निसक बान केहु न डरत है।
बेसर बिसेख बेस कीमत जडाऊ देखि,
हारन समेत तारा-पति हहरत है॥
अधर कपोल दन्त नासिका बखानो कहा,
केश की सुवेश लखि शेष कहरत है।
श्री फल कठोर चक्रवाक से निहार तेरे,
उरज अमोल गोल घायल करत है।

कल्पना प्राचीन होते हुये वर्णन करने का ढग सजीव प्राणात्मक है। सरस्वती देवी की यह एक प्रमुख विशेषता है। और इसी विशेषता से काव्य-जगत मे ये आदरणीय समझी जाती है।

इनका जन्म सवत् १९३२ मे आज़मगढ जिलान्तर्गत कोइरियापार नामक गॉव मे हुआ था। इनके पिता प० रामचरित त्रिपाठी भी एक अच्छे कवि थे। इन्होने अपने पिता से ही शिक्षा प्राप्त की और उन्ही से बगला, ऑगरेज़ी और सस्कृत भी सीखी। इनका विवाह ज़िला आज़म गढ मे, नगवा मे, प० महाबीर प्रसाद जी के साथ हुआ था। इन्होने कई पुस्तके भी लिखी

हैं, जिनमे 'सुंदरी-सुपथ' 'नीति-निचोड' और 'शारदा-शतक छप चुकी है। इन्होंने अपनी एक पुस्तक मे अपना परिचय स्वय निम्नांकित शब्दों मे दिया है:—

जिला जु आज़मगढ अहै ता महँ एक विचित्र।
ग्राम कोइरियापार के, कवि द्विज राम चरित्र॥
ताकी कन्या एक मै, मूर्ति मूर्खता केरि।
कुलवतिन पद-धूरि अस गुणवतिन के चेरि॥
मम शिक्षक कोउ और नहि, निज ही पिता सुजान।
कठिन परिश्रम करि दियो, विद्या-दान महान॥
प्रथम पढायो व्याकरण, पुनि कछु काव्य विचार।
तदनन्तर सिखयो गणित बहुरि सुरीति प्रकार॥
तब कछु उर्दू फारसी बगला वर्ण सिखाय।
कछु अँगरेजी अक्षरन पितु मोहि दीन्ह दिखाय॥
जब लगि मैं मैके रही लिखत पढत रही नित्त।
अब घर पर परवश परी, रहि नहिं सकत सुचित्त॥

इससे यह ज्ञात होता है, कि ससुराल में आने पर कविता के विकास के साधन इन्हे न प्राप्त हुये। और इनका काव्य प्रवाह अवरूद्ध सा हो उठा। यदि इनके कवि हृदय को विकास के सुन्दर साधन उपलब्ध होते तो इसमे सन्देह नहीं कि ये काव्य-जगत मे अपना और भी अधिक उज्वल नाम करतीं। इनके निम्नांकित पद्य दखिये -

[१]

ऐसी नहीं हम खेलनहार बिना रस रीति करे बर जोरी।
चाहै तजौ तजि मान कहौ फिरि जाहि घरे वृषभानु-किशोरी॥
चूक भई हम से तो दया करि नेकु लखो सखियान की ओरी।
ठाढ़ी अहैं मन मारि सबै बिन तोहिं बनै नहिं खेलत होरी॥

[२]

सज्जन सम्बन्धी जे सुपति के तिहारे होहिं,
तिन्हैं अपनाओ चतुराई लिए हाथ मे।
नम्रता बडन माहिं मित्रता सुनारिन सो,
शत्रु-भाव राखिये कुनारिन के साथ मे॥
भाखियो सुबैन दास-दासिन सो प्रेम-सग,
धारिये सु ध्यान सदा शुभ।गुण गाथ मे।
सारिये सकल गृह-काज सुघराई साथ,
वारिये पवित्र प्रीति पति प्राण नाथ मे॥

[३]

भूषण दुचार एक बार एक ठौर पैन्ह,
पैन्हहु सुजानि या मै हानि अति भारी है।
घूघरू औ झॉझ आदि वजनी विशेष छडे,
छमा छम शब्द जासो सब गुन जारी है।
ध्यान हू न होय जाको तव प्रीति ताकी दीठि,
फेरिबे की पूरी अधिकारी झनकारी है।
करहु कदापि अगीकार ये सिंगार नहिं,
पतिव्रत धारी सुनौ विनय हमारी है।

राजरानी देवी

हिन्दी जगत मे कवियित्रिओ द्वारा अभ। तक कविता की जो धारा प्रवाहित हो रही थी, राजरानी देवी उसमे न बह कर उससे बहुत दूर दिखाई देती है। इनकी रचनाओ मे न तो राधा-कृष्ण का वर्णन है, और न भक्ति की वेदना है। न शृ गार की बहार है, और न प्रेम की बौछार है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नही, कि इनकी कविताओं मे प्रेम-वेदना और भक्ति है ही नहीं। नहीं, प्रेम, वेदना भक्ति है, और है अधिक परिमाण मे। किन्तु वह राधा कृष्ण की प्रेम-वेदना और भक्ति न होकर समाज और राष्ट्र की प्रेम वेदना है। इनका हृदय समाज और राष्ट्र की वेदना से दुखी है, आकुल है, बेचैन है। इन्होंने हृदय की इसी आकुलता का अपनी रचनाओं मे चित्र खींचा है। देखिये वे भारत की स्त्रियो को सम्बोधित करके कह रही हैं :—

देवियों क्या पतन अपना देख कर,
नेत्र से आँसू निकलते हैं नहीं।

भाग्य हीना क्या स्वय को लेख कर,
पाप से कलुषित हृदय जलते नही !

जिस प्रकार पुरुष कवियो मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता मे एक नवीन युग उपस्थित किया था, उसी प्रकार स्त्री कवियित्रियो मे राजरानी देवी ने भी कविता के एक नवीन ससार की सृष्टि की है। यद्यपि राजरानी देवी का यह नया ससार अपना नही, भरतेन्दु हरिश्चन्द्र का है। किन्तु तो भी सर्व प्रथम इन्होने उसका सन्देश स्त्री कवियित्रियो को सुनाया है। इनकी कविताओं मे जागरण है, नया भाव है, नई वेदना है। अभी तक कवियित्रियो के जिस काव्य जगत मे हम विचरण करते हुये चले आ रहे थे, यहाँ पहुँचते ही वह समाप्त हो जाता है, और उसके स्थान पर एक नवीन काव्य-जगत की सृष्टि होती है, और उसका बहुत कुछ श्रेय राजरानी देवी ही को है। अत कवियित्रियो के काव्य-इतिहास मे राजरानी देवी का प्रमुख स्थान है।

राज रानी देवी का जन्म मध्य प्रान्त के नरसिह पुर जिले मे पिपरिया नामक गॉव मे हुआ था। १२ वर्ष की अवस्था मे आपका बिबाह नरसिहपुर निवासी श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद जी के साथ हुआ। आपके नौ पुत्र और चार कन्याये है। हिन्दी के सुकवि बाबू रामकुमार वर्मा एम० ए० आप ही के पुत्र है। सवत १६८५ मे आपका देहावसान हो गया। इन्होंने

'प्रमदा प्रमोद' और 'सती सयुक्ता' नामक दो कविता की पुस्तकें भी लिखी है।

निम्नांकित कविताओ मे इनकी देश-भक्ति देखिये :-

[१]

भव्य भारत-भूमि की स्वाधीनता,
जब यवन से पद दलित थी हो चुकी।
दीखती सर्वत्र थी अति दीनता,
फूट की विष-वेलि भी थी बो चुकी॥
पूर्व यश की क्षीण स्मृति ही शेष थी,
वीरता केवल कहानी ही रहीं।
बधुओ मे बधुता निश्शेष थी,
दमन की परिपूर्ण धारा थी बही॥
शत्रुओ को दण्ड देने के लिये,
आर्य शोणित मे न इतनी शक्ति थी।
बीरता का नाम लेने के लिये,
म्यान के सौन्दर्य पर ही भक्ति थी॥
ललित ललनाये बनी सुकुमार-थी,
अग पर आभूषणो का भार था।
रत्न हारों पर समुद बलिहार थीं
सेज ही ससार का सब सार था॥
नेत्र लडना ही सुखद रण-रग था,
चारु चितवन ही अनोखा तीर था।

क्यों न हो ? जब प्रियतमों का सग था,
प्रियतमाओं-युक्त हिन्दू वीर था ॥
नेत्र गोपन कर चिबुक-चुम्बन जहाँ,
प्रेम की विधि का अनूप विधान है ।
मातृ भू के त्राण की गाथा वहाँ,
पापियों के पुण्य-गान समान है ॥
किंकिणी की नाद असि-झकार है,
भ्रू-चपलता है ललित कौशल जहाँ ।
वीर रस होता जहां श्रृगार है,
देश गौरव की शिथिलता है वहां ॥
शुद्ध केसरिया वसन को छोड कर,
राजसी वैभव जहां पर आगया ।
जान लेना वीर पुरुषो मे उधर,
शोक का आतक निश्चय छा गया ॥
बाल रवि के क्षीण अरुण प्रकाश मे,
तारकों की मालिका जिस भांति हो ।
यवन-रवि-युत हिन्द के आकाश मे,
ठीक वैसी आर्य नृप की पाँति हो ।
किन्तु ऊषा की अरुणिमा मे कभी,
एक दो तारे चमकते है कही ।
इस तरह जब तेज-हत थे नृप सभी,
तब बली थे एक दो नर पति कहीं ॥

[२]

देवियो ! क्या पतन अपना देखकर,
नेत्र से आंसू निकलते हैं नहीं ?
भाग्य हीना क्या स्वय को लेख कर,
पाप से कलुषित हृदय जलते नहीं ?
क्या तुम्हारी बदन-श्री सब खो गई,
उच्च गौरव का नही कुछ ध्यान है ?
क्या तुम्हारी आज अवनति हो गई,
क्या सहायक भी नहीं भगवान हैं ?
हो रहे क्यो भीष्म अत्याचार है,
इस तुम्हारे फूल से मृदु गात पर ?
मच रहे क्यो आज हाहाकार है
अब नृशसो के महा उत्पात पर ?
क्या न अब कुछ देश का अभिमान है,
खो गई सुखमय सभी स्वाधीनता ?
हो रहा कितना अधिक अपमान है,
समुद इसको कौन सकता है बता ?
नव-हरिद्र-रजित अग मे,
सर्वदा सुख मे तुम्हीं लवलीन हो।
ग्रन्थि-बन्धन के अनूप प्रसग मे,
दूसरे ही के सदा आधीन हो
बस तुम्हारे हेतु इस ससार मे,

पथ-प्रदर्शक अबन होना चाहिये।
सोच लो ससार के कान्तार मे,
बद्ध होकर यदि जिये तो क्या जिये ?
कर्म के स्वच्छन्य सुख मय क्षेत्र मे,
किंकिणी के साथ भी तलवार हो।
शौर्य हो चचल तुम्हारे नेत्र मे,
सरलता का अग पर मृदु भार हो।
सुखद पतिव्रत धर्म रथ पर तुम चढो,
बुद्धि ही चचल अनूप तुरग हो।
दिव्य जीवन के समर मे तुम लढो,
शत्रु के प्रण शीघ्र ही सब भग हों।
हार पहनो तो विजय का हार हो,
दुन्दुभी यश की दिगन्तों मे बजे।
हार हो तो बस यही व्यवहार हो,
तन चिता पर नाश होने को सजे॥
मुक्त फणियों के सदृश कच-जाल हों,
कामियों को शीघ्र डसने के लिये।
अरुणिमा-युत हाथ उनके काल हो,
सत्य का अस्तित्व रखने के लिये।

[३]

हो रहा कन्नौज मे आनन्द है,
हर्ष की धारा नगर में है बही।

वैर और विरोध बिल्कुल बन्द हैं,
सर्व जनता आज हर्षित हो रही ॥
भीड भारी हो रही प्रासाद मे,
खुल गया है द्वार सारे कोष का ।
नर तथा नारी हुये उन्माद मे,
गूँज उठता शब्द ऊँचे घोष का ॥
नारियाँ सब चल पड़ीं शृ गार कर,
राज्य-गृह की ओर अनुपम हर्ष से ।
मधुरिमा-मय सुखद जय जयकार कर,
हृदय के आनन्द के उत्कर्ष से ॥
थालियों मे फूल-मलाये सजीं,
गीत गा-गाकर चली सुकुमारिया ।
हाव-भावों मे स्वय रति को लजा,
मन-सहित कच बाँध सुन्दर नारिया ॥
मुग्ध मुग्धाये चली व्रीडा सहित,
शीघ्र सकुचा कर पुरुष की दृष्टि से ।
मन्द गति से वे चली क्रीड़ा सहित,
नेत्र चचल कर सुमन की वृष्टि स ॥
था बडे आनन्द का कारण वही,
एक पुत्री थी हुई जयचन्द के ।
हर्ष से थी उगमती सारी मही,
आ गये थे दिन अधिक आनन्द के ॥

—:o:—

बुन्देलाबाला

श्रीमती बुन्देलाबाला एक उच्च कोटि की कवियित्री थीं। इन्होंने एक अच्छा कवि-हृदय पाया था। इनकी कविताओ मे देश और समाज की वेदना है, जीवन और जागृति का एक नवीन सन्देश है। इनके इस सन्देश मे इनकी अपनी मौलिकता है, अपनी विशेषता है। इन्होंने अपनी रचनाओ मे जहां देश-भक्ति की धारा बहाई है, वहाॅ वास्तव मे देश भक्ति है, देश-प्रेम है। इसी लिये एक सुप्रसिद्ध समालोचक ने इनकी कविताओ के सम्बन्ध मे अपनी सम्मति प्रगट करते हुए लिखा है:—श्रीमती बुन्देला बाला ने अच्छी प्रतिभा पाई थी। यदि वे असमय में ही काल के गर्भ मे समा न जातीं तो उनसे हिन्दी-साहित्य का अधिक कल्याण होता। इनकी रचनाओं मे स्वाभाविकता की स्वाभाविक छटा के साथ अधिक ओजस्विता भी है।

श्रीमती बुन्देला बाला हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी की धर्म-पत्नी थीं। इनका वास्तविक नाम गुजराती बाई था, किन्तु ये बुन्देला बाला के नाम से कविता

किया करती थीं। यह सच है, कि इन्होंने लाला जी से ही कविता करनी सीखी, किन्तु यह भी सच है, कि इनके प्रतिभा शाली कवि-हृदय पर लाला जी की कविताओं की छाप न पड़ सकी। लाला जी शृङ्गारी कवि थे। कभी कभी राष्ट्रीय कवितायें भी किया करते थे। किन्तु उन की राष्ट्रीय कविताओं मे बुन्देला बाला की कविताओं की भांति जागरण का सन्देश नही है। यहां मुझे यह कहने मे सकोच नही होता, कि लाला जी की राष्ट्रीय कविताओं पर श्रीमती बुन्देला बाला की छाप है। लोगों का यह कहना भी है, कि लाला जी का सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय ग्रन्थ 'वीर पच रत्न' श्रीमती बुन्देला बाला ही की प्रेरणा का परिणाम है।

श्रीमती बुन्देला बाला का जन्म सवत् १९४० मे गाजी पुर के शादिया बाद नामक कस्बे मे एक कायस्थ कुल मे हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीयुत परमेश्वर दयाल जी था। बीस वर्ष की अवस्था मे इनका विवाह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और ग्रन्थ-कार स्वर्गीय लाला भगवान दीन जी से हुआ। 'दीन' जी के ससर्ग से ही आप मे कवित्त्व शक्ति का विकास हुआ। दुख है, कि विवाह के छः वर्ष पश्चात् ही आप का देहावसान हो गया और हिन्दी-साहित्य एक प्रतिभा शालिनी कवियित्री की सुन्दर रचनाओं से सदा के लिए वचित होगया

इनकी निम्नांकित कविताओ से इनकी देश-भक्ति और कवित्त्व-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है --

[१]

सावधान

सावधान हे युवक उमगो, सावधानता रखना खूब ।
युवा समय के महा मनोहर विषयो मे जाना मत डूब ।।
सर्व काज करने के पहले पूछो अपने दिल से आप ।
"इसका करना इस दुनियाँ मे पुण्य मानते है या पाप"।।
जो उत्तर दिल देय हमारा ,उसे समझ लो अच्छी भाँति ।
काज करो अनुसार उसी के नष्ट करो दु:खों की पाँति ।।
कभी भूल ऐसी मत करना अद्धी के लालच मे आज ।
देना पडै कल्ह ही तुमको रत्न माल सम निज कुल-लाज ।।
युवा समय के गर्म रक्त मे मत बोओ तुम ऐसा बीज ।
वृद्ध समय के शीत रक्त मे फूलै चिन्ता फलै कुबीज ।।
पश्चात्ताप कुरस नित टपकै बदनामी गुठली दृढ़ होय ।
उँगली उठै बाट मे चलते मुँह भर बात न बूझै कोय ।।
यौवन ऋतु बसन्त मे प्यारे कुसुम सपूत देखि मन भूल ।
दबा-दबा कर युक्त-सहित रख निज उमग के सुन्दर-फूल ।।
सावधान ! इनको विनष्ट कर फिर पीछे पछतावेगा ।
वृद्ध वयस सन्मान सुगधित फिर कैसे महकावेगा ।।
परमेश्वर के न्याय-तुला की डाँडी जग मे जाहिर है ।
उसकी ऊँच-नीच कछु करना मानव-बल से बाहर है ।।
अहकार-सर्वदा जगत मे मुँह की खाता आया है ।
नय नम्रता मान पाते है सबने यही बताया है ।।

है प्रत्येक-भव्यता के हित इस जग मे निकृष्टता एक।
विषय रूप मिष्ठान्न मध्य हैं विषमय आमय-कीट अनेक ॥
इन्द्रिय-विषय-शिखर दूरहिं ते महा मनोरम लगते है।
निकट जाय जाँचो समझोगे रूप हरामी ठगते है ॥
है प्रत्येक-ऊँच म नीचा प्रति मिठास मे कड़वा स्वाद।
प्रति कुकर्म मे शर्म भरी है मर्मखोय मत हो बरबाद ॥
प्रकृति नियम यह सदा सत्य है कैसे इसे मिटाओगे।
जग मे जैसा कर्म करोगे, वैसा ही फल पावोगे ॥

[२]

माता और पुत्र की बात चीत

माता—

हे प्यारे कदापि तू इसको तुच्छ श्याम रेखा मत मान।
यह है शैल हिमाचल इसको भारत-भूमि-पिता पहचान ॥
नेह-सहित ज्यो पितु पुत्री का सादर पालन करता है।
यह हिम-गिरि त्यो ही भारत-हित पितृ-भाव हिय धरता है।
गगा जमुना युगल रूप से प्रेम-धार का देकर दान।
भारत-भूमि-रूप दुहिता का नेह-सहित करता सम्मान ॥

पुत्र—

यह जो बाम ओर नक्शे के रेखा मय अतिशय अभिराम।
शोभा मय सुन्दर प्रदेश है मुझे बता दे उसका नाम ॥

माता—

बेटा यह पजाब देश है पुण्य-भूमि सुख शान्ति निवास।
सर्व प्रथम इस थल पर आकर किया आरियों ने निजवास ॥

कहीं गान-ध्वनि, कहीं वेद-ध्वनि, कहीं महा मन्त्रो का नाद ।
यज्ञ फूल से रहा सुवासित यह पजाब सहित-आह्लाद ॥
इसी देश मे बस के 'पोरस' ने रक्खा है भारत-मान ।
जब सम्राट सिकन्दर आकर किया चाहता था अपमान ॥
इससे नीचे देख, पुत्र, यह देश दृष्टि जो आता है ।
सकल वालुका-यय प्रदेश यह राजस्थान कहाता है ॥
इस के प्रति गिरिवर पर बेटा अरु प्रत्येक नदी के तीर ।
देश मान हित करते आये आत्म-विसर्जन क्षत्रिय वीर ॥
कोई ऐसा स्थान नही है जहां अमर चिन्हों के रूप ।
वीर कहानी रजपूतों की लिखी न होवे अमर अनूप ॥
क्षत्रिय-कुल-अवतस वीरवर है प्रताप जी का यह देश ।
रानी पद्मावती सती ने यहीं किया है नाम विशेष ॥
क्षत्रिय वश जाति को चाहिए करना इसको नित्य प्रणाम ।
क्षत्रिय दल का जग मे इससे सदा रहेगा रोशन नाम ॥।

[३]

चाहिए ऐसे बालक !

परशुराम श्रीराम भीम अर्जुन उद्दालक ।
गौतम शकर-सरिस धर्म सत् के सचालक ॥
उत्साही दृढ अग प्रतिज्ञा के प्रति पालक ।
शारीरिक मस्तिष्क शक्ति-बल अरिगण-घालक ॥
काज करै मन लाय, बनैं शत्रुन उर-शालक ।
अब भारत माताहिं चाहिये ऐसे बालक ॥१॥

दुर्बल अरु भयभीत सदा जो कहत पुकारी।
'अरे बाप यह काज हमै सूझत अति भारी।"
"मै नाही कर सकत" शब्द मुख ते न उचारै।
"हा करिहौ उद्योग" सहित उत्साह पुकारै॥
सत्य भाव से कहैं करै अरु बनै न टालक।
अब भारत माताहिं चाहिए ऐसे बालक॥२॥
जो करना है, उसे करै, अपने निज हाथन।
दश-भलाई हत करै अभिलाषा लाखन॥
कठिन परिश्रम देखि न कबहूँ मन ते हारै।
भारी भार निहार न कबहू कधा डारै॥
करै काज बनि कुल-कलक-कारिख-प्रच्छालक।
अब भारत मानाहिं चाहिये ऐसे बालक॥३॥
देखि कठिन कर्त्तव्य उसे जू-जू जनि जानै।
अपना धर्म बिचारि उसे अपना करि मानै॥
ऐसे बालक जबहिं देश मे मुखिया ह्वै हैं।
तब भारत के सकल दुख दारिद्र नशै है॥
मिटि है हिय को ताप और कटि हैं जजालक।
अब भारत माताहि चाहिये ऐसे बालक॥४॥

श्रीमती गोपाल देवी

श्रीमती गोपाल देवी हिन्दी की सुप्रसिद्ध साहित्य-सेविका है। कहना चाहिये कि आपने अपने सुयोग्य पति प० सुदर्शनाचार्य जी के साथ साहित्य-सेवा ही मे अपने जीवन का अधिकांश समय बिताया है, और इस समय भी साहित्य-सेवा मे ही अपना समय व्यतीत कर रही है। वह एक समय था, जब आप ही के सम्पादकत्त्व मे प्रयाग से 'गृहलक्ष्मी' निकलती थी, और उसके द्वारा स्त्री-साहित्य की धूम मची हुई थी। आपने अपनी गृहलक्ष्मी द्वारा अनेक कवियित्रियो को प्रोत्साहित किया, और उनकी रचनाओं को 'गृहलक्ष्मी' मे छाप कर उन्हे काव्य-जगत मे अधिक आगे बढ़ाया। आप का हृदय स्वय कवि हृदय है और उसमे अच्छी कवित्त्व शक्ति भी है। किन्तु फिर भी हिन्दी-जगत साहित्य-सेविका ही के रूप मे आपसे अधिक परिचित है।

आपने अधिकाशतः बच्चों के लिये ही कविताये लिखी है। आपकी कविताये अत्यन्त सीधी सादी और सरल है। इसमे सन्देह नहीं, कि वे जिस के लिए लिखी गई है, उसकी मनोवृत्ति

के अनुकूल है। आप ने बच्चो के लिये जो रचनाये लिखी हैं, उनमे अलग अलग शिक्षा-प्रद कहानियां छिपी हुई है। इन पद्यात्मक कहानियों से बच्चों का मनोरञ्जन तो होता है, उन्हे शिक्षा भी प्राप्त होती है।

आप का जन्म सवत् १९४० मे बिजनौर मे हुआ था। आपके पिता का नाम प० शोभाराम जी था। आपकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही अपने पिता के द्वारा हुई। अठारह वर्ष की अवस्था मे आप का विवाह प० सुदर्शनाचार्य्य जी के साथ हुआ, और आपने उन्ही के सहयोग से साहित्य-जगत मे प्रवेश किया। आपने कई वर्षों तक 'गृहलक्ष्मी' का सम्पादन किया है, और कई पुस्तके भी लिखी हैं। आप साहित्य-सेविका और कवियित्री होने के साथ ही साथ कुशल वैद्या-भी हैं, और आज कल लखनऊ मे रह रही हैं।

बच्चों के लिए लिखी गई आपकी निम्नाकित कविताये देखिये —

[१]

मौत और घसियारा

किसी गांव मे इक घसियारा। रहता था किस्मत का मारा।
बेटा बेटी जोड़ू जाता। कोई न थे अल्ला से नाता॥
पर जब पापी पेट न माना। उसने घास छीलना ठाना॥
ठीक दुपहरी जेठ महीना। सिर से पावों बहा पसीना॥
बुड्ढा लगा खोदने घास। हाय पेट यह तेरे आस॥

खोद-खाद कर बोझ बनाया। थोडी दूर उसे ले आया ॥
पर जब थक कर हुआ बेहाल। बोझ पटक रोया तत्काल ॥
होकर दुखी लगा चिल्लाने। मौत गई, तू कहाँ, न जाने ॥
अरी मौत तू आजा, आजा। मुझ पर जरा रहम तू खाजा ॥
दया मौत को उस पर आई। उसने अपनी शकल दिखाई ॥
बोली, "बुड्ढे यह क्या कहता। क्यों नहि कर्म-भोग तू सहता ॥
आगे देख मौत घसियारा। सिर पिटाय रह गया विचारा ॥
पर फिर बोला सोच विचार। "देवी तुम्ही जगत आधार ॥
बड़ी कृपा की तुमने मात। मुझ बूढे की सुन ली बात ॥
मैंने इससे कष्ट दिया है। बोझ घास का बाध लिया है ॥
पर मुझसे नहि जाय उठाया। इससे माता तुम्हे बुलाया ॥
आप लगा दे नेक सहारा। इतना ही बस काम हमारा ॥"

[२]

भेड और भेडिया

नदी किनारे भेड खडी एक सुख से पीती थी पानी।
एक भेडिये ने लख उसको मन मे पाप-बुद्धि ठानी ॥
बिना किसी अपराध भला मै इसका कैसे करूँ हनन।
उसे मारने को वह जी मे लगा सोचने नया यतन ॥
कर विचार आकर समीप यों बोला कपट-भरी बानी।
'अरी भेड़ तू बडी दुष्ट है क्यो करती गँदला पानी।"
क्रोध भरी लख आंख विचारी भेड़ रही टुक वहां सहम।
बोली "क्यों अपराध लगाते हो चित लाते नहीं रहम ॥

मैं तो पीती हूं पानी तुमसे नीचे की ओर ।
भला कहीं होती भी होगी जल की उलटी दौर ।"
सुन कर उसके बचन भेडिया फिर बोला उससे ऐसे–
पार साल उस पेड तले तू ने दी थी गाली कैसे ॥"
डर कर भेड विनय से बोली मन मे उसको जालिम जान ।
"मैं तो आठ महीने की भी नही हुई हूँ कृपा निधान ।"
"कहाँ तलक तेरे अपराधो को दुष्टा मै कहाँ करूँ ।
तू करती है बहस वृथा मे भूख कहाँ तक सहा करूँ ॥
तू न सही तेरी माँ होगी यो कह कर वह झपट पड़ा ।
भेड विचारी निरपराध को तुरत खा गया खड़ा खडा ॥
जो जालिम होता है उससे बस नहि चलता एक ।
करने को वह जुल्म बहाने लेता ढूँढ अनेक ॥

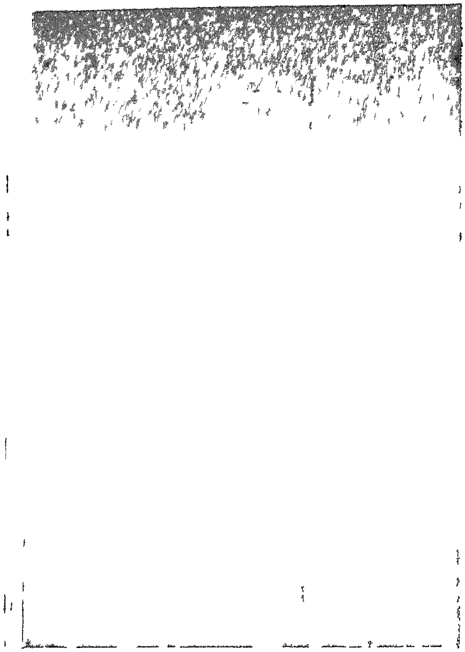
[३]

चमगीदड

एक बार पशु और पक्षियो म ठन गई लडाई घोर ।
चमगीदड़ ने सोचा "हूँगा जो जीतेगा उसकी ओर ॥
कई दिनो के बाद लख पडी उसे जीत जब पशु-दल की ।
आय मिला पशुओ म फौरन करन लगा बात छलकी ॥
"भाई मै भी तुम से हूँ पशु के मुझमे सब लक्षण ।
पशुओ से मिलते है मेरे रहन-सहन भोजन भक्षण ॥
दाँत हमारे पशुओ के-से मादा ब्याती बच्चो को ।
सब पशुओ के ही समान वह दूध पिलाती बच्चो को ॥

सुन उसकी बाते पशुओ ने अपने दल मे मिला लिया ।
अगले दिन पक्षी-दल ने पशुओं पर भारी विजय किया ॥
उसी समय पक्षी सेना ने चमगोदड को पकड लिया ।
घबडाकर चमगीदड ने पक्षी-नायक से विनय किया ॥
आप हमारे राजा हैं, हमभी पक्षी कहलाते हैं ।
फिर क्यो हम अपने ही दल से वृथा सताये जाते हैं ॥
देखो पंख हमारे, हम उडते हैं, पेडों पर रहते ।
हाय आज झूठी शका वश अपने दल मे दुख सहते ।"
सुन चमगीदड की बाते पक्षी-नायक ने छोड दिया ।
जान बची चमगादड की तब उसने जय जयकार किया ॥
हुई लड़ाई अन्त, अन्त मे सुलह हुइ दोनो दल मे ।
भेद खुला चमगीदड का सारा सब लोगो मे पल मे ॥
तब से वह ऐसा शर्माया दिन मे नहीं निकलता है ।
अन्धेरे मे छिपकर चरता नहीं किसी से मिलता है ॥
समय पडे जो दोनों दल की करते हैं हाँ जी हाँ जी ।
वे चमगीदड के समान दोनो की सहते नाराजी ॥

—:o.—



तोरन देवी 'लली'



तोरन देवी 'लली'

लली जी की रचनाये प्रगतिशील हैं, ओजस्विनी है, और है प्राणदायिनीं। उनमे न तो शब्दों की दुरूहता है, और न अदृश्य जगत की कल्पना। उनकी रचनाये सीधे सादे शब्दों मे हृदय के भावों के साथ छलकती हुई दिखाई देती हैं। उनमे सरसता है, स्वाभाविकता है, और सरलता है। वे पाठकों के प्राणों को छूती हैं, और उनमे झनझनाहट उत्पन्न करती है। हिन्दी और सस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान पडित अमर नाथ झा लली जी की कविताओ के सम्बन्ध मे लिखते हैं:—लली जी की रचनाओं मे विशषता यह है, कि शब्द विन्यास मे वे दूर-दूर से कल्पनाओं को ढूँढने मे अव्यक्त अदृश्य जगत के परिभ्रमण मे समय नष्ट नहीं करती। स्वाभाविक सरलता और सरसता-ये दो गुण इनमे विशेष उल्लेखनीय है। और इन्हीं दो गुणों के कारण वे इतनी हृदय ग्राही है। इनके पढने से हृदय पर सघ. प्रभाव होता है। इनका अर्थ गूढ नहीं है, किन्तु मर्मस्पर्शी है।"

'लली' जी न युग की कवियित्री है। उन्होने जो कुछ गाया है, राष्ट्र का राग गाया है। उनके राग मे राष्ट्र की वेदना है, राष्ट्र की पीडा है, और इसी लिये वे पीडित भारत के लिये नवयुग की कवियित्री भी हैं। उन्होने अपनी रचनाओं के द्वारा केवल अपने राष्ट्र का आह्वान किया है। उस राष्ट्र का आह्वान किया है, जिसमे स्वाधीनता है, मानवी-वैभव है, और है बन्धु भावना। उनकी रचनाओ मे उनका एक अपना पन है, और

उनकी एक अपनी विशेषता है। उस विशेषता मे प्राणो को प्राणवान बनाने की शक्ति है, जीवन को जीवन बाँटने की क्षमता है, और यही लला जी की रचनाओ की सबमे बड़ो विशेषता है।

लली जी की राष्ट्रीय कवितायें बडी ही ओजस्विनी और चमत्कार-पूर्ण है उन्हे पढने से ऐसा ज्ञात होता है मानों सचमुच उनमे किसी पीडित का हृदय बोल रहा है। साहस, शक्ति के साथ करुणा और प्रेम का सम्मिलन हृदय के ऊपर अपना अपूर्व ही प्रभाव डालता है। निम्नांकित पक्तियो के 'लली' जी की सजीव राष्ट्रीय कल्पना देखिये:—

मैं कैसे बन्द। हूँ जननी,
तू परतत्र कहाँ थी।
बन्दी कौन कहेगा, उसको वह कैसे बन्धन मे'
तेरा ही निर्मित तन जिसका, तेरा वैभव मन म।
माँ। तू परतत्रन कहाँ थी?

भाव सरल, किन्तु मर्म स्पर्शी है। इसी प्रकार की मर्म-स्पर्शिता लली जी की सम्पूर्ण राष्ट्रीय रचनाओ मे विद्यमान है।

लली जी की रचनाओ मे राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त मानवता के लिये जीवन की ज्योति भी हैं। जिस प्रकार उन्होंने दुखी होकर राष्ट्र की वेदना का राग गाया है, उसी प्रकार उन्होंने मानवी भावनाओ की सृष्टि भी की है। राष्ट्र की भावनाओं को

व्यक्त करते करते उनकी आकाक्षाये इतनी ऊँची हो गई हैं, कि वे विश्व-भावना के रूप मे बदल गई है। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं मे ही विश्वभावना की झलक है। व अपने मे राष्ट्र के साथ ही साथ विश्व को भी देखती है, और देखती हैं, जगत के समस्त मनुष्यो को। राष्ट्रीय भावनाओं के साथ उडती हुई उनकी स्वतत्र कल्पना जब विश्व-भावना का रूप ग्रहण करती है, तब अपने आप ही उनका उच्चादर्श व्यक्त हो जाता है। निम्नाकित पद्यांश मे उनके उच्चादर्श को देखिये. –

"अब देखूँगी उत्थानों मे,
देश-प्रेम के अभिमानो मे,
वीर श्रेष्ठ के गुण गानो मे,
अमर सुयश मय सन्मानो मे,
दर्शन होते ही तज दूँगी,
हिय वेदना अपार–
मुझसे मिल जाना एक बार।

कितनी सुन्दर कल्पना है, कितना अच्छा आत्म चित्रण है। इसी प्रकार की कल्पना लली जी की अधिकाश कविताओं मे विद्यामान है। 'लली' जी ने जो कुछ लिखा है, चमत्कार के साथ लिखा है। उनकी प्रत्येक-कल्पना मे चमत्कार है, सरसता है, और है सजीवता। सरलता तो लली जी की एक अपनी विशेष वस्तु है। सरल और स्वाभाविक शब्दो के द्वारा भावों के ससार को जागृत कर देना 'लली' जी भली भाँति जानती हैं।

'लली' जी का जन्म सम्वत् १९५३ मे जबलापुर जिलातर्गत 'पिपरिया' नामक गाँव मे हुआ। उनके पिता का नाम प० कन्हैया लाल तिवारी है। 'लली' जी की शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। इनका विवाह रायबरेली निवासी प० कैलासनाथ शुक्ल बी० ए० के साथ सवत १९६८ मे हुआ। शुक्ल जी इस समय सेक्रेटरियट मे एक अच्छे पद पर काम करते हैं।

'लली' जी अपने जीवन के प्रारभ काल ही से कविता कर रही है। पिता के घर मे ही इनके हृदय मे कविता-शक्ति जागृत हुई, और समय के साथ साथ वह विकसित होती गई। एक युग था, जब 'लली' जी की रचनाये हिन्दी की सभी पत्र-पत्रिकाओ मे बराबर प्रकाशित हुआ करती थीं, और लोग उन्हे बडे सम्मान की दृष्टि से पढते थे। मिथिलापति महाराज कामेश्वर सिंह जी की ओर से 'लली' जी को 'साहित्य-चन्द्रिका' की उपाधि भी प्राप्त है। इसमे सन्देह नहीं, कि 'लली' जी वास्तव मे साहित्य की चन्द्रिका हैं। क्योंकि चन्द्रिका ही की भॉति आपकी विशुद्ध रचनाये हृदय को शीतल करती और प्राणवान बनाती है। आपकी कविताओ का एक सग्रह 'जागृति' के नाम से प्रकाशित हुआ है, और उस पर आपको पॉच सौ रुपये का सेकसरिया पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। निम्नाकित कविताओ मे 'लली' जी की काव्य-प्रतिभा और उनका कल्पना-चमत्कार देखिये :—

[१]

अभिलाषा

मुझसे मिल जाना एक बार।
कहां कहा मैं ढू ढ रहा हूँ,
कब से रही पुकार ॥
मुझसे मिल जाना एक बार।
नव कुसुमो की कुजलता मे,
निशि तारो की सुन्दरता मे,
सरल हृदय की उज्वलता मे,
कुसुमित दल की उत्कलता मे,
कितना तुमको खोज चुकी हूं।
जिसका वार न पार—
मुझसे मिल जाना एक बार।
सरिता की गति मतवाली मे,
प्रिय बसन्त की हरियाली मे,
बाल प्रभाकर की लाली मे,
निशानाथ की उजियाली मे,
आशावादी बन कर लोचन,
अब तक रहे निहार—
मुझसे मिल जाना एक बार।
अब देखूँगी उत्थानों में,
देश प्रेम के अभिमानो में,

वीर श्रेष्ठ के गुण गानों मे,
अमर सुयश मय मन्मानो मे
दर्शन होते ही तज दूँगी,
हिय वेदना अपार—
मुझसे मिल जाना एक बार।

[२]

एक प्रश्न

बतला दे मेरी दया मयी, कैसे तेरा आह्वान करू ?
वे लहर कहाँ हैं सागर मे,
जिनके सम मधुर पुकार करू ?
इस वीणा मे ध्वनि भी न मिली,
जिससे स्वर-मय झंकार करू ।
वे पत्र कहाँ, वे पुष्प कहाँ, जिनसे तेरा सन्मान करू ।
बतला दे मेरी दया मयी ! कैसे तेरा आह्वान करू ?
वह भाव कहां कवि की कविता मे,
मै जिसकी अनुहार करू ?
वे चरण कहा है ओज पूर्ण,
जिन पर जीवन बलिहार करू ?
हैं वे पथ-दर्शक वीर कहाँ, यदि दर्शन का अनुमान करू ?
वे अटल भक्त है कहा 'लली' जिनका मै गर्व गुमान करू ?
बतला दे मेरी दयामयी ! कैसे तेरा आह्वान करू ?

[२]

प्रथम किरण

अलस भाव त्याग सजनि,
प्रथम किरण आई ।
सुषमा की निधि अपार,
क्यो न उठे पलक भार,
तन्द्रा वश यों निहार,
सहसा मुसुकाई ।
अलस भाव त्याग सजनि,
प्रथम किरण आई ॥
जाग उठा विश्व झार,
जाग उठा प्रकृति प्यार,
उषा खोल रही द्वार,
तू क्यों अलसाई ?
अलस भाव त्याग सजनि,
प्रथम किरण आई ॥
निज निज रुचि कर शृङ्गार,
जननी मन्दिर पधार,
पुलक प्रेम से सँवार,
आरती सजाई ।
अलस भाव त्याग सजनि,
प्रथम किरण आई ॥

मैं बलि सखि बार-बार,
जागृत हो एक बार,
आँख खोल देख अरी,
नव सदेश लाई।
अलस भाव त्याग सजनि,
प्रथम किरण आई॥

[४]

मैं

वे अचेतन क्यों समझते,
सजनि! मै तो जागती सी।
ठहर जा! टुक देख मेरे श्रान्त उर की भावनाये,
लहलहाती लालसाये, कर्म रत प्रिय कामनाये—
श्रान्त है, विश्रान्ति तज कर,
क्रान्ति प्रति पल माँगती सी।
वे अचेतन क्यों समझते,
सजनि! मै तो जागती सी॥
जल मरा सौन्दर्य ही पर शलभ का अनुराग कैसा?
दे प्रकाश प्रदीप जलता ही रहा वह त्याग कैसा?
आज मै उस दीप पर,
अनुराग अपना वारती सी।
वे अचेतन क्यों समझते,
सजनि! मै तो जागती सी॥

वेदना क्या है ? किसी सुख स्वप्न का इतिहास होगा,
आँसुओ मे भी छिपा अलि ! नियति का परिहास होगा,
कौन उस परिहास पर,
निज चेतनाये त्यागती सी।
वे अचेतन क्यो समझते,
सजनि ! मैं तो जागती सी ॥
मै वही हूँ विश्व मे जिसने कहीं पीडा न जानी,
मिट गये युग-युग अमिट होती रही जिसकी कहानी,
ज्योति जिसकी आज जग में,
जगमगाती जागती सी,
वे अचेतन क्यों समझते,
सजनि ! मै तो जागती सी ॥

[५]

गायक

गायक ! अलाप फिर वही तान,
जिससे मै इतना जान सकूँ,
मेरा प्रियतम कितना महान !

मै नहीं सुनूंगी रजनी के,
नीरव रोदन का करुण गीत,
क्यों व्यर्थ निराशावाद सुना,
तू आकर्षित कर रहा गीत।

मै नही चाहती सध्या के,
युग-युग का जर्जर प्रणय गान,
हाँ मधुर उषा आगमन सुना,
कैसा होगा कचन विहान ।

गायक ! अलाप फिर वही तान,
जिससे मैं इतना जान सकू,
मेरा प्रियतम कितना महान ।

मै योगिनि हू न वियोगिनि हूँ,
जगती की दुखिया नहीं मीत,
इन सुखद अमर आशाओं ने,
सारे जीवन को लिया जीत,

जीवन घट मे जागृति भर लू,
कर सकू ध्येय का उचित गान,
फिर से अलाप तू वही तान।
मेरे गायक ! अनुरोध मान।

गायक ! अलाप फिर वही तान।
जिससे मै इतना जान सकू,
मेरा प्रियतम कितना महान् ।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

कविता हृदय से सम्बन्ध रखती है। वह हृदय से निकलती, और हृदय को लेकर के ही अपने धर्म का पालन करती है। कविता का धर्म है, कि वह दूसरे हृदय को स्पर्श करे, और अपने हृदय को उस दूसरे हृदय मे उतार दे। कविता की सृष्टि का यही व्यापक उद्देश्य भी है। अब प्रश्न यह उठता है, कि कविता किस प्रकार अपने धर्म का पालन करती हुई, अपने उद्देश्य की सीमा पर पहुँच सकती है। जब यह प्रश्न हमारे सामने आता है, तब हम कविता मे कवि का हृदय टटोलने लगते है, और यह देखने लगते है, कि कवि ने शब्दों की तूलिका का आश्रय लेकर अपनी जिन भावनाओ का चित्र कविता मे खीचा है, उसके हृदय ने उनका हृदयगम किया है या नहीं। उसमे उसकी अनुभूति बोल रही है, या नही ? उसमे उसकी अनुभूति की प्रेरणा विद्यमान है, या नहीं। अब यह बात अधिक स्पष्ट हो गई, कि कविता उसी अवस्था मे अपने धर्म का पालन कर सकती है, जब कि उसमे कवि का हृदय



श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान



श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

उसके साथ ही साथ यह भी सच है। कि हृदय की अनुभूति और अनुभूति की प्रेरणा ही कविता का आधार है। अनुभूति और अनुभूति की प्रेरणा के अभाव मे कविता 'कविता' नहीं रह जाती, वह कुछ और हो जाती है, इसलिये हो जाती है कि वह प्राणो को नही छूती, हृदय को स्पर्श नहीं करती। ऐसी अवस्था मे वह अपने धर्म-सिंहासन से नीचे खिसकने के साथ ही साथ अपने उद्देश्य से भी च्युत हो जाती है।

कविता के इस धर्म को सामने रख कर यदि हम श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओ की विवेचना करते है, तो वे हमे सबसे आगे दिखाई देती है। उनकी समस्त रचनाओं मे उनका हृदय छलकता हुआ दिखाई देता है। उनके हृदय की भावनाओ मे उनके हृदय की सच्ची अनुभूति है, उनकी अनुभूति की वास्तविक प्रेरणा है। हृदय की अनुभूति और अनुभूति की वास्तविक प्रेरणा के साथ ही साथ उनमे प्रसाद गुण है। उन्होने जो कुछ कहा है, इस ढग से कहा है, कि सुनने वाले का हृदय उसे शीघ्र ही अपने म ढाल लेता है। उनके कथन मे उनका अपना एक निरालापन, अपना एक आकर्षण, और अपना एक चमत्कार है। वह निरालापन, वह आकर्षण, और वह चमत्कार शब्दो से नही व्यक्त किया जा सकता। वह केवल पढा जा सकता है, समझा जा सकता है, और मन ही मन अनुभव किया जा सकता है। उनकी सीधी-सादी कल्पनाये मन के विचारो को जागृत, उत्तेजित और

विकसित कर देती हैं। वे अपनी भावनाओ को ज्यो का त्यों पाठको के हृदय मं उतार देती है। हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध समालोचक ने चौहान जी की कविताओ की आलोचना करते हुये लिखा है:-आप के हृदय मे भावो की छाप बहुत स्पष्ट पड़ती है। और उनके आवेगो मे विह्वल होने की शक्ति भी आप मे है। आप जिस सहज-सुन्दर भाव से अपने भावो को पाठक के सम्मुख रख देती है, उससे पाठक क्या, समालोचक को भी हठात् ऐसा जान पडता है, मानो समस्त हृदय ज्यो का त्यो निकाल कर सामन रख दिया गया है।"

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान 'हृदयवाद' की कवितायें लिखने मे हिन्दी-साहित्य मे अधिक आगे बढी हुई है। उनकी कविताओ मे भले ही कल्पनाओ का उडान कम हो, किन्तु वे हृदय को स्पर्श करती है, प्राणो मे झनझनाहट उत्पन्न करती हैं। ऐसा ज्ञात होता है, मानो सचमुच उनकी अनुभूति अपनी अनुभूति बन कर प्राणो म डोल रही हा। उदाहरण के लिये निम्नाकित पंक्तियाँ देखिये:-

'उन्हे सहसा, निहारा सामने सको- हो आया।
मुँदी आँखे सहज ही लाज से नीचे झुकी थी मैं॥
कहूं क्या प्राणधन से यह हृदय मे सोच हो आया।
वही कुछ वोल दे पहले, प्रतीक्षा म, रुकी थी मैं॥
अचानक ध्यान पूजा का हुआ झट आँख जो खोली।
नहीं देखा, उन्हे बस, सामने सूनी कुटी देखी॥

हृदय-धन चल दिये, मै लाज से उनसे नहीं बोली।
गया सर्वस्व, अपने आप को दूनी लुटी देखी॥

कितनी उत्कृष्ट पक्तियाँ है। उत्कृष्ट पक्तियॉ इसलिये है, कि इनमे कवि की सच्ची अनुभूति है। ऐसा ज्ञान होता है, मानो वास्तव मे इनके भीतर किसी का हृदय बोल रहा है। सुभद्रा जी की इन पक्तियों को आज मैने पहली बार पढा है, और मै सच कहता हू, कि मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है, मानो मै मीरा की पक्तियॉ पढ रहा हूँ। कितनी स्वभाविकता है, कितनी सरलता है। काव्यालकारो और शब्द वैचित्र्य के अभाव मे भी उक्त पक्तिया एक बार हृदय आन्दोलित किये बिना नही रहतीं सुभद्रा जी की यह सब से बडी विशेषता है। सीधे सादे शब्दों के द्वारा हृदय स्पर्शी भावो को जागृत कर देना सुभद्रा जी ही जानती हैं। इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य की कवित्रियो मे उनका सर्व श्रेष्ठ स्थान है।

अनुभूति तो सुभद्रा जी की एक अपनी वस्तु है। उनकी अनुभूति, वास्तव मे अनुभूति है। उन्होने वास्तव मे अपने जीवन से कुछ सोखा है, और सीखा है। उसके बहुत सन्निकट जाकर। उनकी अनुभूति मे विशालता है, व्यापकता है। देखिये, उनकी निम्नांकित पक्तिया। इनमे बचपन की स्वानुभूति का कैसा सुन्दर चित्रण है:—

बार बार आती है मुझको,
मधुर याद, बचपन, तेरी।

गया, ले गया, तू जीवन की,
सबसे मस्त खुशी मेरी ॥

चिन्ता-रहित खेलना-खाना,
वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द।
कैसे भूला जा सकता है।
बचपनका अतुलित आनन्द ॥

ऊंच-नीच का ज्ञान नही था,
छुआछूत किसने जानी ?
बनी हुई थी, अहा ! झोपडी-
और चीथडों मे रानी ॥

किये दूध के कुल्ले मैने,
चूस अंगूठा सुधा पिया।
किलकारी, कलोल मचाकर।
सूना घर आबाद किया ॥

बचपन का ऐसा उत्कृष्ट चित्रण बहुत कम देखने मे आता है। कवियित्री अपने बचपन की स्मृति म स्वय भी शिशु हो गई है। सुभद्रा जी सचमुच शिशु जीवन का अनुभव करती है। वे सदैव शिशु की भाति सरल, सहृदय और चिन्ता-भावनाओ से दूर रहना चाहती है। किन्तु जीवन तो एक स्थान पर स्थिर नही रहता। उसका काम तो है आगे बढना। 'शिशुपन' की चाह होने पर भी जब वह सुभद्रा जी से छूट जाता है, तब सुभद्रा जी अपने उसी स्वाभाविक स्वर मे कहती है:—

वह सुख का साम्राज्य छोड कर,
मै मतवाली बडी हुई ।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई-सी,
दौड द्वार पर खडी हुई ॥
लाज भरी आंखे थीं मेरी,
मन मे उमॅग रगीली थी ।
तान नसीली थी कानो मे,
चचल छैल छबीली थी ॥
दिल मे एक चुभन-सी थी,
यह दुनिया सब अलबेली थी,
मन मे एक पहेली थी, मै,
सब के बीच अकेली थी ।

शिशु पन कवियित्री के साथ बहुत से लोग थे। माता थे, पिता थे। भाई थे, बन्धु थे। किन्तु जीवन जब शिशुपन को छोड कर आगे चलता है, और यौवन के प्रथम चरण में प्रवेश करता है, तब कवियित्री अपने को एक विचित्र ससार मे पाती है। उसे उसका अपना जीवन बदला हुआ दिखाई देता है। मन मे उमगो और अभिलाषाओ के होने पर भी वह ससार मे अकेली होने के कारण चिन्तित हो उठती है। किन्तु कुछ ही देर के पश्चात् उसकी चिन्ता-भावना बदल जाती है, और वह कह उठती है:-

सब गलियाँ इसकी भी देखो,
इसकी खुशियाँ न्यारी है ।
प्यारी, प्रीतम की रग-रलियों
की स्मृतियाँ भी प्यारी है ।

किन्तु यहाँ कवियित्री का मन नहीं रमता। कुछ ही देर मे वह जीवन से व्याकुल हो जाती है, और पुन: कह उठती है:-

माना मैने युवा-काल का,
जीवन खूब निराला है ।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का,
हृदय मोहने वाला है ॥
किन्तु यहाँ झंझट है भारी,
युद्ध क्षेत्र संसार बना ।
चिन्ता के चक्कर मे पडकर,
जीवन भी है भार बना ।

कवियित्री जीवन के विभिन्न अवस्थाओं मे प्रवेश करके उनका अनुभव करती है, और उसका हृदय पुनः शिशुपन के लिये तडप उठता है। शिशुपन की सी सरलता, और शिशुपन की सी विश्ववन्धुता उसे जीवन की किसी अवस्था मे नहीं प्राप्त होती, और वह फिर अपने 'शिशुपन' की याद करने लगती है। वह अपने उस शिशुपन को 'शिशुओं' मे खोजती है, और उसमे मिल जाने का प्रयत्न करती है। देखिये, क्या यह सच नहीं है:-

मैं बचपन को बुला रही थी,
बोल उठी बिटिया मेरी ।
नन्दन-वन-सी फूल उठी,
वह छोटी सी कुटिया मेरी ॥
मै भी उसके साथ खेलती,
खाती हूँ, तुतलाती हू ।
मिल कर उसके साथ स्वय,
मैं भी बच्ची बन जाती हूं ।

सुभद्रा जी की इन पक्तियो ने उन्हे हिन्दी-साहित्य मे अमर बना दिया है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओ का जैसा सुन्दर चित्रण उन्होने अपनी उक्त पक्तियो मे किया है, वैसा सुन्दर और सजीव चित्रण बहुत कम देखने को मिलता है।

सुभद्रा जी की कविताओ मे जहाँ विश्व-भावना की अधिकता है, वहाँ वे अपने राष्ट्र को भी नही भूल सकी है। यद्यपि विश्वभावना को लेकर चलने वाले कवि और कवियित्री के लिये, यह एक निम्न कोटि का स्थान है, किन्तु कवि का विशाल और करुण-हृदय अपने राष्ट्र की पीडित उद्गार को कैसे उपेक्षा की दृष्टि से देख सकता है, और ऐसी अवस्था मे जब कि वह स्वयं राष्ट्र के लिये अपना सब कुछ दे देने के लिये तैयार हो। सुभद्रा जी को भी हम इसी अवस्था मे पाते है। सुभद्रा जी श्रेष्ट कवियित्री होने के साथ ही साथ राष्ट्रीय कार्य कर्मी भी हैं। फिर भी वे अपने राष्ट्र को कैसे भूल सकती हैं? उन्होने अपने

जीवन को ही राष्ट्र मे मिला दिया है। अतः उनकी राष्ट्रीय-कवितायें भा उनकी जीवन की कवितायें हैं। उनकी रष्ट्रीय कविताओं मे भी एक विचित्र चमत्कार है, एक विचित्र ओजस्विता है। राष्ट्रीय दृष्टि से उनकी 'झाँसी की रानी' वाली कविता सबसे अधिक ओजस्विनी और सुन्दर कही जाती है। इसमे सन्देह नहीं, कि वह है भी अधिक ओजस्विनी। सुभद्रा जी ने अपनी उस कविता मे झाँसी की रानी का जो चित्रण किया है, वह बहुत ही सफल और सजीव है। उसे पढते ही हृदय मे साहस और उत्साह की तरगे तरगित होने लगती है। ऐसा मालूम होता है, मानो झाँसी की रानी स्वय अपने वास्तिविक रूप मे सामने खडी हुई है।

सुभद्रा जी अपने राष्ट्रीय भावों को समय-समय पर विभिन्न रसो से सीचती है, और सींचती हैं, बडी ही सफलता तथा बडे ही कौशल के साथ। कहीं तो वे अपने राष्ट्र के लिये अपने हृदय की वेदना प्रगट करती हैं, और कही अपनी ओजस्विनी वाणी मे वीर-रस की सृष्टि करती है। कही करुणा की धारा बहाती है, तो कही लोगो को प्रेम-सगीत सुनने के लिये विवश कर देती है। ऐसा ज्ञात होता है, सुभद्रा जी का सभी रसो के ऊपर कुछ न कुछ आधिपत्य अवश्य है। करुणा रस का उनका एक सुन्दर चित्रण देखिये'—

बहन आज फूली समाती न मन मे।
तड़ित आज फूली समाती न घन मे॥

घटा है न फूली समाती गगन मे।
लता आज फूली समाती न बन मे॥
मैं दो बहन किन्तु भाई नही है।
है राखी सजी पर कलाई नहीं है॥
है भादो घटा किन्तु छाई नहीं है।
नही है खुशी पर रुलाई नही है॥

करुण रस की ये पंक्तियाँ किसी भी साहित्य को अधिक गौरवान बना सकती हैं।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी का जन्म संवत् १९६९ मे प्रयाग मे हुआ था। इनके पिता का नाम ठाकुर रामनाथ सिंह जी था। संवत् १९७६ ई० मे इनका विवाह खण्डवा-निवासी ठाकुर लक्ष्मण सिंह जी चौहान बी० ए० एल० एल० बी० के साथ हुआ। उस समय ये प्रयाग के क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल मे शिक्षा प्राप्त करती थी। विवाह के पश्चात् भी इनका अध्ययन जारी रहा। असहयोग के जमाने मे इन्होंने अपना पढ़ना छोड दिया। पढना छोड कर ये अपने पति के साथ देश की सेवा में लग गई, और तब से लेकर आज तक बराबर देश की सेवा मे संलग्न हैं। इस समय आप कॉंग्रेस की ओर से मध्य प्रान्तीय असेम्बली की माननीया सदस्या भी हैं।

सुभद्रा जी बचपन ही से कविता कर रही हैं। इनकी बचपन की कविताओं मे ही इनकी सर्वतोमुखी-प्रतिभा की झलक मिलती थीं। जिस समय ये पढती थीं, उसी समय मासिक-पत्र

पत्रिकाओं मे इनकी कविताओं की धूम मची रहती थी। जीवन के साथ ही साथ इनकी कविता भी विकसित होती गई, और इतनी विकसित हो गई, कि वह साहित्य-जगत की एक स्थायी सम्पत्ति बन गई। आप कवियित्री ही नहीं हैं, सुन्दर कहानी लेखिका भी हैं। कविताओं की तरह आपकी कहानियां भी बडी ही हृदय स्पर्शनी और भावमयी होती हैं। आप को दो बार पाच-पाच सौ रुपये का सेकसरिया पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। पहला पुरस्कार आप की कविता-पुस्तक 'मुकुल' पर और दूसरा आप की कहानी-पुस्तक 'विखरेमोती' पर प्राप्त हुआ है। हिन्दी-जगत की आप निधि हैं, और आप से हिन्दी-जगत को अभी बडी-बडी आशाये हैं। नीचे हम आप की कुछ कविताये उद्धृत कर रहे हैं। पाठक देखेगे, कि उसमें विश्व-भावना के साथ ही साथ कितनी उच्च कोटि की देशभक्ति है:—

[१]

कलह-कारण

कडी आराधना करके बुलाया था उन्हे मैंने।
पदो को पूजने के ही लिये थी साधना मैंने॥
तपस्या नेम व्रत करके रिझाया था उन्हे मैंने।
पधारे देव, पूरी हो गई, आराधना मेरी॥
उन्हे सहसा निहारा सामने, सकोच हो आया।
मुँदी आँखे, सहज ही लाज से, नीचे झुकी थी मैं।
कहूँ क्या प्राणधन से यह हृदय मे सोच हो आया।

वहीं कुछ बोल दे पहले प्रतीक्षा मे रुकी थी मैं ॥
अचानक ध्यान पूजा का हुआ, झट आँख जो खोली।
नहीं देखा उन्हे, बस सामने सूनी कुटी देखी ॥
हृदय-धन चल दिये, मैं लाज से उनसे नहीं बोली।
गया सर्वस्व, अपने आपको दूनी लुटी देखी ॥

[२]

चलते समय

तुम मुझे पूछते हो 'जाऊँ' ?
मै क्या जवाब दूँ तुम्ही कहो ?
'जा' कहते रुकती है जबान,
किस मुँह से तुमसे कहूँ रहो ?

सेवा करना था जहाँ मुझे,
कुछ भक्ति-भाव दरसाना था।
उन कृपा—कटाक्षो का बदला,
बलि होकर जहाँ चुकाना था ॥

मै सदा रूठती ही आई,
प्रिय ! तुम्हे न मैने पहचाना।
वह मान बाण-सा चुभता है,
अब देख तुम्हारा यह जाना ॥

[३]

ठुकरा दो या प्यार करो
देव ! तुम्हारे कइ उपासक

कई ढग से आते है ।
सेवा में बहुमूल्य भेट ले,
कई रग के लाते हैं ॥

धूमधाम से साज बाज से,
मन्दिर मे वे आते है ।
मुक्ता मणि बहुमूल्य वस्तुये,
लाकर तुम्हे चढाते हैं ॥

मै ही हू गरीबिनी ऐसी,
जो कुछ साथ नहीं लाई ।
फिर भी साहस कर मन्दिर मे,
जा करने को आई ॥

धूप-दीप नैवेद्य नहीं है,
झाँकी का शृगार नहीं ।
हाय ! गले मे पहनाने को,
फूलो का भी हार नहीं ॥

मै कैसे स्तुति करूँ तुम्हारी,
है स्वर मे माधुर्य नही ।
मन का भाव प्रगट करने को,
वाणी मे चातुर्य नहीं ॥

नही दान है, नहीं दक्षिणा,
खाली हाथ चली आई ।

पूजा की विधि नही जानती,
फिर भी नाथ ! चली आई ॥

पूजा और पुजापा प्रभुवर !
इसी पुजारिन को समझो ।
दान दक्षिणा और निछावर,
इसी भिखारिन को समझो ॥

मै उन्मत्त, प्रेम का लोभी,
हृदय दिखाने आयी हूं ।
जो कुछ है, बस यही पास है,
इसे चढाने आयी हूं ॥

चरणों पर अर्पित है, इसको,
चाहो तो स्वीकार करो ।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है,
ठुकरा दो, या प्यार करो ॥

[४]

मेरा नया बचपन

बार-बार आती है मुझको,
मधुर याद बचपन तेरी ।
गया, ले गया, तू जीवन की,
सबसे मस्त खुशी मेरी ॥

चिन्ता-रहित खेलना खाना,
वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द ।

कैसे भूला जा सकता है,
बचपन का अतुलित आनन्द ॥

ऊँच नीच का ज्ञान नही था,
छुआ-छूत किसने जानी ?
बनी हुई थी अहा ! झोपडो,
और चीथडो मे रानी ॥

किये दूध के कुल्ले मैंने,
चूस अँगूठा सुधा पिया ।
किलकारी कल्लोल मचा कर,
सूना घर आबाद किया ॥

रोना और मचल जाना भी,
क्या आनन्द दिखाते थे !
बडे-बडे मोती से आँसू,
जयमाला पहनाते थे ॥

मैं रोयी, माँ काम छोड़ कर,
आयी, मुझको उठा लिया ।
झाड़-पोछ कर चूम-चूम,
गीले गालों को सुखा दिया ॥

दादा ने चन्दा दिखलाया,
नेत्र-नीर द्रुत चमक उठे ।
धुली हुई मुसकान देखकर,
सब के चेहरे चमक उठे ॥

वह सुख का साम्राज्य छोड कर,
मै मतवाली बडी हुई ।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई सी,
दौड द्वार पर खडी हुई ॥

लाज भरी आँखे थीं मेरी,
मन मे उमँग रगीली थी ।
तान रसीली थी कानों मे,
चचल छैल छबीली थी ॥

दिल मे एक चुभन-सी थी,
यह दुनिया सब अलबेली थी ।
मन मे एक पहेली थी,
मै सब के बीच अकेली थी ॥

मिला, खोजती थी, जिसको,
हे बचपन ! ठगा दिया तू ने ।
अरे ! जवानी के फदे मे,
मुझको फँसा दिया तू ने ॥

सब गलियाँ उसकी भी देखी,
उसकी खुशियाँ न्यारी है ।
प्यारी, प्रीतम की रग-रलियो,
की स्मृतियाँ भी प्यारी हैं ॥

माना मैंने युवा काल का,
जीवन खूब निराला है ।

आकांक्षा पुरुषार्थ ज्ञान का,
उदय मोहने वाला है ।
किन्तु यहाँ झंझट है भारी,
युद्ध क्षेत्र ससार बना ।
चिन्ता के चक्कर में पड कर,
जीवन भी है भार बना ॥

आजा बचपन ! 'एक बार फिर,
दे दे अपनी निर्मल शान्ति,
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली,
वह अपनी प्राकृत विश्रान्ति ॥
वह भोली सी मधुर सरलता,
वह प्यारा जीवन निष्पाप ।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा,
तू मेरे मन का सन्ताप ॥

मैं बचपन को बुला रही थी,
बोल उठी बिटिया मेरी ।
नन्दन-वन सी फूल उठी,
यह छोटी-सी कुटिया मेरी ॥
'माँ ओ' कह कर बुला रही थी,
मिट्टी खा कर आयी थी,
कुछ मुँह मे कुछ लिये हाथ मे,
मुझे खिलाने आयी थी ॥

पुलक रहे थे अंग, दृगों मे,
कौतूहल था छलक रहा ।
मुँह पर थी आह्लाद लालिमा;
विजय गर्व था झलक रहा ॥

मैंने पूछा, 'यह क्या लायीं' ?
बोल उठी, वह 'माँ का ओ ।'
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से;
मैंने कहा, "तुम्हीं खाओ ।"

पाया मैंने बचपन फिर से,
बचपन बेटी बन आया ।
उसकी मंजुल मूर्ति देख कर,
मुझ मे नव-जीवन आया ॥

मैं भी उसके साथ खेलती:—
खाती हूं, तुतलाती हूँ ।
मिल कर उसके साथ स्वयं,
मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ॥

जिसे खोजती थी बरसों से,
अब जाकर उसको पाया ।
भाग गया था मुझे छोड कर;
वह बचपन फिर से आया ॥

[५]

झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे, राजवंशो ने भृकुटी तानी थी।
बूढे भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी॥
लुटी हुई आज़ादी की कीमत सब ने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की सबने मन मे ठानी थी॥
चमक उठी सन् सत्तावन मे वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हर बोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी–
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

२

कानपूर के नाना की मुँह बोली बहिन 'छबीली' थी।
लक्ष्मीबाई नाम पिता की वह सन्तान अकेली थी॥
नाना के सग पढती थी वह नाना के सग खेली थी।
बरछी ढाल कृपाण कटारी उसकी यही सहेली थी॥
वीर शिवाजी की गाथाये उनको याद ज़बानी थी।
बुन्देले हर बोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी–
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

३

'लक्ष्मी थी, या दुर्गा थी, वह स्वय वीरता की अवतार।
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारो के वार॥
नक़ली युद्ध व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार।
सैन्य घेरना, दुर्ग तोडना, ये थे उसके प्रिय खेलवार॥

महाराष्ट्र कुल देवी इसकी भी आराध्य भवानी थी।
बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

४

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाइ झाँसी मे।
व्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मी बाई झाँसी मे॥
राज महल मे बजी बधाई खुशियां छाई झाँसी मे।
सुभट बुँदेलो की विरुदावलि-सी वह आई झासी मे॥
चित्रा ने अर्जुन को पाया शिव को मिली भवानी थी।
बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लडी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी॥

५

उदित हुआ सौभाग्य मुदित महलों मे उजियाली छाई।
किन्तु काल गति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई॥
तीर चलाने वाले कर मे उसे चूडिया कब भाई।
रानी विधवा हुई हाय ! विधि को भी नहीं दया आई॥
निःसन्तान मरे राजा जी रानी शोक समानी थी।
बुन्देले हरबोलो के ख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

६

रानी गई सिधार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी।
मिला तेज से तेज तेज की वह सच्ची अधिकारी थी॥

अभी उम्र कुल तेइस की थी मनुज नही अवतारी थी।
हमको जीवित करने आई बन स्वतन्त्रता नारी थी॥
दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

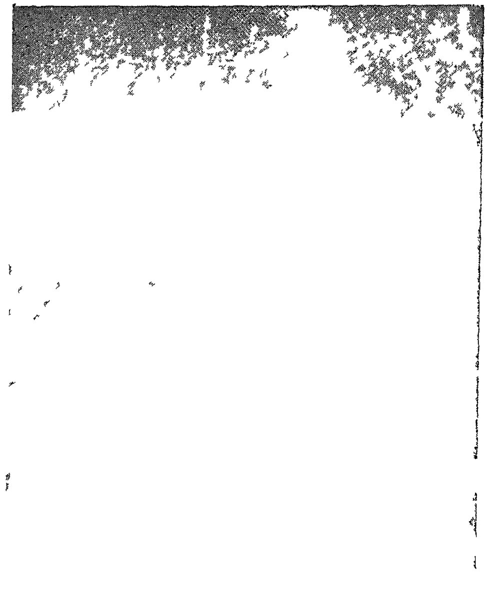
[६]

साकी

अरे ढाल दे पी लेने दे ! दिल भर कर प्यारे साकी।
साध न रह जाये कुछ इस छोटे से जीवन की बाकी॥
ऐसी गहरी पिला, कि जिससे रग नया छा जावे।
अपना और पराया भूलूँ तू ही एक नज़र आवे॥
ढाल-ढाल कर पिला, कि जिससे मतवाला होवे ससार।
साकी ! इसी नशे मे कर लेगे भारत-माँ का उद्धार॥

श्रीमती महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा हिन्दी-साहित्य की सर्व श्रेष्ठ कवियित्री हैं। कवियित्रियों मे ही नही, पुरुष कवियों मे भी किसी अश मे उनका स्थान सर्वोपरि है। वे अपनी सुललित, करुण, और व्यापक भावनाओं के साथ बहुत आगे बढ गई हैं। हम तो उन्हे हिन्दी-साहित्य मे वहां देख रहे हैं, जहाँ विश्व के बडे-बडे कवि है। उनकी सुन्दर और मानवी भावनाओ से लसी हुई रचनाये प्रान्तीय भाषाओ मे लिखी गई रचनाओं से अभिमान के साथ टक्कर लेती हुई सुदूर विश्व मे भी छिटक जाती है। एक गुलाम देश और गुलाम देश के मनुष्यों के साहित्य की कवियित्री होने के कारण, सभव है, महादेवी जी की रचनाये विश्व के हृदय मे स्थान न प्राप्त कर सकी हो, किन्तु यह निर्विवाद है, कि उनमे विश्व के हृदय मे स्थान प्राप्त करने की सजीव शक्ति है। हमारा तो यह दृढ़ विश्वास है, कि जब कभी विश्व के सहृदय काव्य-मनीषी हिन्दी साहित्य की युग परिवर्तन कारी रचनाओं का अध्ययन करेगे, तब हम देखेगे, कि हिन्दी-साहित्य की महादेवी जी विश्व के श्रेष्ठ कवियों की पक्ति मे



श्रीमती महादेवी वर्मा



श्रीमती महादेवी वर्मा

सुन्दर' की खोज मे जगत के अणु-अणु को बजाती है, और उनमे झनझनाहट उत्पन्न करती है। उनका सत्य-प्रियतम, अमूर्त है, अदृश्य है, अव्यक्त है, और असीमित है। महादेवी जी अपने इसी प्रियतम के पास पहुँचना चाहती है, और पहुँच कर उसमे मिल जाना चाहती है। किन्तु मिल नही पाती, पहुँच नही पाती उनकी वेदना और करुण शील काव्य का यही एक रहस्य है।

उनकी वेदना आध्यात्मिक है, सत्य है। सत्य इसीलिए है, कि वह आध्यात्मिक है, और उसमे है ममाकुल आत्मा का परमात्मा के लिये प्रणय-निवेदन। आत्मा, अपने प्रियतम परमात्मा से, जो सत्य है, जो रुचिर है, बिछुडी हुई प्रियतमा की भाँति ससार मे विचरण कर रही है। उसके प्रियतम का वह ससार इस ससार से भिन्न है। वह नित्य है, वह अमर है। महादेवी जी आत्मा के रूप मे उस ससार को देख तो नहीं पाती, किन्तु उस 'सत्य' ससार की कल्पना अवश्य करती है। वे अपनी कविता मे उसी ससार को बसाती है, और उसी ससार का निरूपण करती है। उन्होने अपने प्रियतम के उस ससार को देखा तक नहीं है, किन्तु वे अपनी अभिनव उपमाओं और रूपको के द्वारा आँखो के सामने उसका एक चित्र अवश्य खडा कर देती हैं, जो वास्तव मे उस ससार ही की भाँत रुचिर, सुखद और सत्य-सा ज्ञात होता है। रुचिर, सुखद इसलिये ज्ञात होता है, कि वह सत्य है, और वह सत्य इसलिये है, कि उसमे अखिल प्रकृति के मानव जीवन

की प्रतिच्छवि है। महादेवी जी अपने उसी अमिट संसार मे करुण कल्पनाओ के सूत्र मे मानव हृदय को गूँथती है। उनका हृदय विश्व का हृदय है, उनकी भावना विश्व की भावना है। वे प्रकृति और सपूर्ण जगत को अपने से दूर नहीं देखतीं। वे देखती हैं, कि प्रकृति, जगत, और जीवन के मध्य मे उनका प्रियतम स्थिर है, और वह एक ही तार मे, एक ही सूत्र मे, जगत के हृदय-हृदय को गूँथे हुये हैं। अतः महादेवी जी भी जगत के हृदय-हृदय में, प्रकृति के कण-कण मे अपने प्रियतम को खोजती है और भाव साम्यता की शक्ति से जीवन, प्रकृति और जगत को भेद कर उसके सन्निकट पहुचने का प्रयत्न करती है।

महादेवी जी इस विश्व-भावना को लेकर चलने वाली हिन्दी-साहित्य मे एक कवियित्री हैं। जिस प्रकार उनका प्रियतम सत्य है, सुन्दर है, अमिट है, उसी प्रकार महादेवी जी की काव्य कल्पनाये भी अधिक सुन्दर और अमिट सी हैं। अमिट इसलिये है, कि वे किसी सत्य का चित्रण करती हैं, किसी अमर की छवि उतारती है। वह 'सत्य' वह 'अमर' महादेवी जी का प्रियतम है, आराध्य देव हैं, और है वह उनके सन्निकट होने पर उनसे बहुत दूर, इसीलिये महादेवी जी की कविताओं मे, कल्पनाओं मे, करुणा है, वेदना है, विरह है, विषाद है। उन्हे विषाद बहुत प्यारा लगता है। और प्यारा इस लिये लगता है, कि उसकी सृष्टि उनमे अपने प्रियतम के वियोग मे हुई है। महादेवी जी स्वयं अपने इस

दु:ख के सम्बन्ध मे कहती हैं:-"दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे ससार को एक सूत्र मे बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असख्य सुख हमे चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुचा सके, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दु:ख सब को बाँट कर—विश्व जीवन मे अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल विन्दु समुद्र मे मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।

अपने दु:खवाद के सम्बन्ध मे ये हैं महादेवी जी के विचार! कितने उच्चकोटि के विचार हैं। जिस कवि के इतने उच्च कोटि के विचार हों, क्या कोई उसे विश्व कवि के सिंहासन से दूर रख सकता है! महादेवी जी ने इसी विशालता के साथ अपने दु:खवाद का चित्रण भी किया है। उनके इसी दु:खवाद के सम्बन्ध मे हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और लेखक राय कृष्णदास जी उनकी 'नीरजा' नामक पुस्तक की भूमिका मे लिखते हैं:—श्रीमती वर्मा-हिन्दी-कविता के इस वर्तमान युग की वेदना-प्रधान कवियित्री है। उनकी काव्य-वेदना आध्यात्मिक है। इसमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय-निवेदन है। कवि की आत्मा, मानो इस विश्व मे बिछुडी हुई प्रेयसी की भाँति प्रियतम का स्मरण करती है। उसकी

दृष्टि से, विश्व की सम्पूर्ण प्राकृतिक शोभा-सुषमा एक अलौकिक चिर सुन्दर की छाया मात्र है। इस प्रतिबिम्ब-जगत को देख कर कवि का हृदय, उसके सलोने बिम्ब के लिये ललक उठा है। मीरा ने जिस प्रकार उस परम-पुरुष की उपासना सगुण रूप मे की थी, उसी प्रकार महादेवी जी ने अपनी भावनाओं मे उसकी उपासना निर्गुण रूप मे की है। उसी एक का स्मरण, चिन्तन, एव उसके तादात्म्य होने की उत्कण्ठा महादेवी जी की कविताओ के उपादान हैं।"

महादेवी जी की समस्त रचनाओं मे उत्कृष्ट दुःखवाद है, और उनके दु:खवाद मे आध्यात्मिकता है, दार्शनिकता है। वे आध्यात्मिक वियोगिनी हैं। वियोगिनी ही की भॉति वे अपने प्रियतम का आह्वान करती हैं, उसके स्वरूप का निरूपण करती हैं, और करती हैं, अपने शृङ्गार को सजग। इसके लिये कहीं वे वेदना का अंचल पकडती हैं, कहीं करुणा की घनी छाया मे बैठती है, और कहीं अपने उल्लसित मान-अभिमान भी व्यक्त करती है। यह सब है वियोगिनी ही की भाँति, किन्तु है एक सफल आध्यात्मिक-वियोगिनी की भॉति। जो कुछ है, बहुत ऊँचा है, बहुत विशाल है। साधारण पाठक का साहस नहीं, कि वह वहाँ पहुच सके, उसकी वास्तविकता को परख सके। किन्तु उसमे एक तथ्य है, एक सत्य है,-और है, वह बहुत ही सुन्दर, बहुत ही कल्याणकारी। निम्नांकित पंक्तियों मे उसका चित्र देखिये:--

शृङ्गार कर लेरी सजनि !
नव क्षीर निधि की ऊर्मियों से,
रजत झीने मेघ सित,
मृदु फेन मय मुक्तावली से,
तैरते तारक अमित,
सखि ! सिहर उठती रश्मियो का,
पहिन अवगुण्ठन अवनि ।

\+ + +

तिमिर पारावार मे,
आलोक प्रतिमा है अकम्पित,
आज ज्वाला से बरसता,
क्यों मधुर घन सार सुरभित ?
सुन रही हुं एक ही
झंकार जीवन मे प्रलय में ?
कौन तुम मेरे हृदय मे ?

\+ + +

कण-कण उर्वर करते लोचन,
स्पन्दन भर देता सूना पन,
जग का धन मेरा दुख निर्धन,

\+ + +

क्यो वह प्रिय आता पार नहीं ?
शशि के दर्पण मे देख-देख,

मैं ने सुलझाये तिमिर केश,
गूँथे चुन तारक-पारिजात,
अवगुंठन कर किरणें अशेष,
क्यो आज रिझा पाया उसको,
मेरा अभिनव शृंगार नहीं॥

\+ \+ \+

मैं नीर भरी दुख की बदली!
मैं क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी,
नव जीवन-अंकुर बन निकली!

यह है महादेवी जी का दुःख वाद। हमारा तो यह दृढ मत है, कि महादेवी जी अपने दुःख वाद से मनुष्य को मनुष्य बनाने का प्रयत्न कर रही है। उनका दुःख, उनकी वेदना, उनका वियोग, अपने लिये नहीं, समस्त मानव जगत के लिये हैं। वे एक साधिका की भाँति अखिल जगत को प्रेम और करुणा का सन्देश सुना रही है। उनके प्रेम मे साम्यता है, विशालता है। संसार यदि उनकी प्रेम-साम्यता और विशालता के तत्व को समझने का प्रयत्न करे तो इसमे सन्देह नहीं, कि संसार मे बसने वाले मनुष्यों को मनुष्य बनने मे बडी सहायता प्राप्त होगी।

महादेवी जी की काव्य-कल्पनाओं के ऊपर अभी एक लेख 'देशदूत' मे प्रकाशित हुआ था। उस लेख से महादेवी जी की

कविताओ और उनके दुःख वाद पर अधिक प्रकाश पडता है। अत. हम उस लेख के लेखक श्रीयुत ठा० श्रीनाथ सिंह जी की अनुमति से उसका कुछ अश यहाँ उद्धृत कर रहे है.—

हम हिन्दी वालों को महादवी वर्मा का गर्व होना चाहिये। उन्होंने अपनी इस अथक साहित्यिक साधना के द्वारा मीरा को ही नवीन जन्म नहीं दिया, विश्व-साहित्य मे भी हिन्दी का मस्तक ऊँचा किया है। अपनी परिमार्जित भाषा, गम्भीर चिन्तना, और कोमल कल्पना के द्वारा इन्होंने जिस गीत-साहित्य का सृजन किया है, उसने मीरा को भी अप्रतिभा कर दिया है। मीरा महादेवी जी से उतना ही पीछे रह गई हैं, जितना कि समय उन्हे छोड आया है।

मीरा और महादेवी, दोनों ने विरह के गीत गाये हैं। किन्तु फिर भी दोनों मे थोडा अन्तर है। मीरा के प्रियतम की एक तसवीर हो सकती है, उसे देख लेने पर मीरा जी तृप्ति का अनुभव कर सकती है, वह प्रियतम मानव रूपधारी भी हो सकता है, किन्तु महादेवी का प्रियतम, मीरा के प्रियतम से कहीं अधिक रहस्यमय और पहुंच से बाहर है। या यों कहिये, कि अस्पष्ट भी है। तसवीर तो उसकी कदापि बनाई ही नहीं जा सकती। मानव-रूप को कभी यह सौभाग्य प्राप्त नही हो सकता, कि वह इस प्रियतम का पद प्राप्त करे। विश्व-मानव आत्मा, अपना समस्त सौन्दर्य, अपना समस्त वैभव, अपनी समस्त विनय-श्री लेकर आवे और अत्यन्त श्रद्धा से प्रेरित होकर महा-

देवी के चरणों मे बिखेर दे, तब भी वे उसकी ओर दृष्टिपात नहीं करेंगी। वे तो न जाने किस अनन्त, अगोचर, अद्भुत, अस्पष्ट पर अपना मन वार चुकी हैं। उसे पाकर भी नहीं पातीं, उसे देख कर भी नहो देखतीं। केवल उसके आने की कल्पना करती विरह के गीत गाती चली जाती हैं। उनका विरह अनन्त है, उनकी पीडा असह्य है, किन्तु यही उनका सहारा भी है।"

श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म सवत् १६३४ मे फरूखाबाद मे हुआ था। इनके पिता का नाम बाबू गोविन्द प्रसाद और माता का नाम हेमरानी है। सवत् १९७५ मे ग्यारह वर्ष की अवस्था मे इनका विवाह हो गया। विवाह हो जाने के पश्चात् समाज की सकुचित भावना के कारण आपकी शिक्षा-प्रगति मे कुछ बाधा अवश्य उपस्थित हुई, किन्तु नियति आपको पुन: शिक्षा के मैदान मे खींच लाई, और आप पुन. प्रयाग के क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में शिक्षा प्राप्त करने लगीं। प्रयाग से ही आपने बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाये पास की, और इस समय आप प्रयाग मे ही महिला विद्यापीठ कालेज की सुयोग्य प्रिन्सपिल हैं।

विद्यार्थी अवस्था से ही आप कविता कर रही हैं। पहले आप राष्ट्रीय कविताये लिखा करती थीं। किन्तु जीवन के विकास के साथ ही साथ उनकी रचनाओं का भी विकास हुआ, और वे समाज तथा राष्ट्र के घेरे को तोड कर विश्व के विस्तृत आंगन मे विचरण करने लगीं। आप की रचनाओं के चार सग्रह

पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके है —नीहार, रश्मि, नीरजा, यामा। 'यामा' सब से बडी पुस्तक है, और अभी हाल मे प्रकाशित हो चुकी है। आप को एक बार सेकसेरिया पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। आप कुछ दिनों तक 'चाँद' की सम्पादिका भी रह चुकी हैं।

निम्नाकित रचनाओ मे आपकी विश्व-कल्पना का चमत्कार देखिये:—

[१]

अलि कैसे उनको पाऊँ ?

वे आँसू बन कर मेरे,
इस कारण ढुल ढुल जाते,
इन पलको के बन्धन मे,
मैं बाँध-बाँध पछताऊँ।

मेघो मे विद्युत सी छवि,
उनकी बन कर मिट जाती,
आँखो की चित्रपटी मे,
जिसमें मै आँकन पाऊँ।

वे आभा बन खो जाते
शशि किरणो की उलझन मे,
जिसमें उनको कण-कण मे,
ढूँढूँ पहिचान न पाऊँ।

सोते सागर की धडकन,
बन लहरों की थपकी से,
अपनी यह करुण कहानी,
जिसमे उनको न सुनाऊँ।

वे तारक बालाओं की,
अपलक चितवन बन आते,
जिस मे उनकी छाया भी,
मैं छू न सकूँ अकुलाऊँ।

वे चुपके से मानस मे,
आ छिपते उच्छ्वासे बन,
जिसमें उनको साँसों मे,
देखूँ पर रोक न पाऊँ।

वे स्मृति बन कर मानस में,
खटका करते हैं निशि दिन,
उनकी इस निष्ठुरता को,
जिसमे मैं भूल न जाऊँ।

[२]

तुम्हे बाँध पाती सपने मे!
तो चिर जीवन-प्यास बुझा,
लेती उस छोटे क्षण अपने मे!
सावन-सी उमड बिखरती,
शरद निशा सी नीव घिरती,

धो लेती जग का विषाद
ढुलते लघु आँसू-कण अपने में !
तुम्हे बाँध पाती सपने मे !

मधुर राग बन विश्व सुलाती,
सौरभ बन कण कण बस जाती,
भरती मैं संसृति का क्रन्दन,
हँस जर्जर जीवन अपने मे !
तुम्हे बाँध पाती सपने मे !

सब की सीमा बन, सागर सी,
हो असीम आलोक-लहर सी,
तारों मय आकाश छिपा,
रखती चचल तारक अपने मे !
तुम्हे बाँध पाती सपने मे !

शाप मुझे बन जाता बर सा
पतझर मधु का मास अजर सा,
रचती कितने स्वर्ग, एक,
लघु प्राणों के स्पन्दन अपने मे !
तुम्हे बाँध पाती सपने मे !

साँसे कहती अमर कहानी,
पल पल बनता अमिट निशानी,
प्रिय ! मैं लेती बाँध मुक्ति,

सो सौ लघुतम बन्धन अपने मे !
तुम्हे बॉध पाती सपने मे !

[३]

तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या !
तारक मे छवि प्राणो में स्मृति,
पलको मे नीरव पद की गति,
लघु उर मे पुलको की स्मृति,
भर लाई हू तेरी चचल,
और करूँ जग मे सचय क्या !

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाई रजनी विषाद मय,
यह जागृति वह नींद स्वप्न मय,
खेल खेल थक थक सोने दो,
मै समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या !

तेरा अधर विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मित मिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधु शाला
फिर पूछूँ क्यो मेरे साकी,
देते हो मधु मय, विषमय क्या !

रोम रोम मे नन्दन पुलकित,
सॉस सॉस जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न मे विश्व अपरिचित,

मुझमे नित बनत मिटते प्रिय,
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?
हारूँ तो खोऊ अपना पन,
पाऊ प्रियतम मे निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन !
भर लाऊँ सीपी मे सागर,
प्रिय ! मेरी अब हार विजय क्या ?
चित्रित तू मै हूं रेखा क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर सगम,
तू असीम मै सीमा का भ्रम,
काया छाया मे रहस्य मय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

[४]

मै बनी मधु मास आली !
आज मधुर विषाद की घि' करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चॉदनी,
उमड आई री दृगो मे,
सजनि कालिन्दी निराली !
रजत-स्वप्नो में उदित अपलक विरल तारावली,
जाग सुख-पिक ने अचानक मदिर पचम तानली,
बह चली निश्वास की मृदु,
वात मलय-निकुज-पाली !

सजल रोमो मे बिछे है पाँवडे मधु स्नात से,
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से,
क्या न अब प्रिय की बजेगी,
मुरलिका मधु राग वाली !
मै बनी मधु मास आली !

[५]

क्या नई मेरी कहानी !
विश्व का कण कण सुनाता,
प्रिय वही गाथा पुराना !
सजल बादल का हृदय-कण,
चू पडा जब पिघल भू पर,
पी गया उसको अपरिचित,
तृषित दरका पक का उर,
मिट गई उससे तडित सी,
हाय वारिद की निशानी !
करुण वह मेरी कहानी !
जन्म से मृदु कज-उर मे,
नित्य पाकर प्यार लालन,
अनिल के चल पख पर फिर,
उड गया जब गन्ध उन्मन,
बन गया तब सब अपरिचित,

हो गई कलिका बिरानी,
निठुर वह मेरी कहानी !
चीर गिरि का कठिन मानस,
वह गया जो स्नेह निर्भर,
ले लिया उसको अतिथि कह,
जलधि ने जब अंक मे भर
वह सुधा सा मधुर पल मे,
हो गया तब क्षार पानी !
अमिट वह मेरी कहानी !

[६]

कहता जग दुख को प्यार न कर !
अनबीधे मोती यह दृग के,
बँध पाये बन्धन मे किसके,
पल पल बनते पल पल मिटते,
तू निष्फल गुथ गुथ हार न कर !
कहता जग दुख को प्यार न कर !
किसने निज को खोकर पाया, ?
किसने पहचानी वह छाया, ?
तू भ्रम वह तम तेरा प्रियतम,
आ सूने मे अभिसार न कर !
कहता जग दुख को प्यार न कर !

यह मधुर कसक तेरे उर की,
कचन की और न हीरक की,
मेरी स्मित से इसका विनिमय,
करले या चल व्यापार न कर!
कहता जग दुख को प्यार न कर!

दर्पणमय है अणु अणु मेरा,
प्रति बिम्बित रोम रोम तेरा,
अपनी प्रति छाया से भोले!
इतनी अनुनय मनुहार न कर!
कहता जग दुख को प्यार न कर!

सुख मधु मे क्या दुख का मिश्रण,
दुख-विष मे क्या सुख-मिश्री कण,
जाना कलियो के देश तुझे,
तो शूलो से शृगार न कर!
कहता जग दुख को प्यार न कर!

[७]

टूट गया वह दर्पण निर्मम!
उसमे हँस दी मेरी छाया,
मुझमें रो दी ममता, माया,
अश्रुहास ने विश्वस जाया,
रहे खेलते आँख मिचौनी,

टूट गया वह दर्पण निर्मम !
अपने दो आकार बनाने,
दोनो का अभिसार दिखाने,
भूलो का ससार बसाने
जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने,
हँस हँस दे डाला था निरुपम !
टूट गया वह मेरा दर्पण निर्मम !
कैसा पतझर कैसा सावन,
कैसी मिलन विरह की उलझन,
कैसा पल घड़ियो मय जीवन,
कैसे निशि दिन कैसे सुख दुख,
आज विश्व मे तुम हो या तम।
टूट गया वह दर्पण निर्मम !
किसमे देख सवारू कुन्तल,
अंगराग पुलकों का मल मल,
स्वप्नो से आँसू पलके चल,
किस पर रीझू किससे रूठू,
भर लूं किस छवि से अन्तरतम !
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

[८]

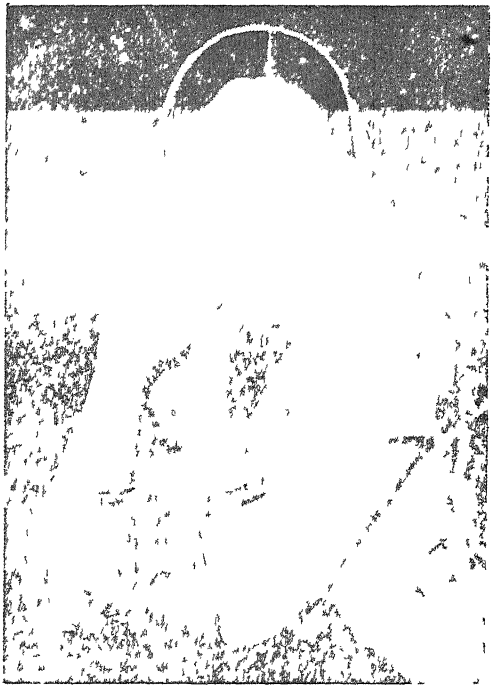
आँसू का मोल न लूगी मैं !
यह क्षण क्या ? द्रुत मेरा स्पन्दन,

यह रज क्या ? नव मेरा मृदु तन,
यह जग क्या ? लघु मेरा दर्पण,
प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन,
मेरे सब सब मे प्रिय तुम,
किससे व्यापार करूंगी मै ?
आँसू का मोल न लूंगी मै !
निर्जल हो जाने दो बादल,
मधु से रीते सुमनों के दल,
करुणा बिन जगती का अंचल,
मधुर व्यथा विन जीवन के पल,
मेरे दृग मे अक्षय जल,
रहने दो विश्व भरूंगी मै !
आँसू का मोल न लूंगी मैं !
मिथ्या प्रिय मेरा अवगुण्ठन !
पाप शाप मेरा भोला पन,
चरम सत्य, यह सुधि का दर्शन,
अन्त-हीन, मेरा करुणा-कण,
युग युग के बन्धन को प्रिय !
पल मे हँस 'मुक्ति' भरूंगी मैं !
आँसू का मोल न लूंगी मै !

श्रीमती तारा देवी पाण्डेय

श्रीमती तारा देवी पाण्डेय हिन्दी-ससार मे एक अमर-ज्योति बन कर चमक रही हैं। आपकी श्रेष्ठ और सुललित रचनाओं के लिये हिन्दी साहित्य के हृदय मे एक सम्मान-पूर्ण चाह है। आप अपनी एक-एक कविता, और कविता की एक-एक पक्ति के द्वारा हिन्दी-साहित्य को सम्पत्ति प्रदान कर रही है। ऐसी सम्पत्ति प्रदान कर रही है, जिस पर हिन्दी-जगत गर्व कर सकता है, और जिसे वह विश्व-साहित्य की पक्ति मे बड़े अभिमान से रख सकता है। हमारा यह दृढ विश्वास है, कि विश्व-साहित्य की उस पक्ति मे भी जहाँ बड़े बडे अमर कला कारो की कृतियाँ रहेगी, तारा देवी की रचनाये 'धनी' और प्रकाश दायिनी ही प्रमाणित होगी।

तारा देवी का हृदय-कवि, उनका अपना कवि है। वह अपने स्वर मे बोलता है, और अपनी भाषा मे लिखता है। उसके अपने छन्द है, और अपने शब्द हैं। उसकी अपनी अनुभूति है, अपनी अभिव्यक्ति है। वह साहित्य के इस नूतन



श्री मती तारादेवी पाण्डेय



श्री मती तारादेवः पाण्डेय

होते, दो दिन हँस कर जीवन-लीला समाप्त करते हैं। बात कहते कहते उनका रग ऐसा बदलता है, कि काल की नैरगियाँ देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। पतग प्रेमिक है, सच्चा प्रेमिक है, प्राण हथेली पर लिये फिरता है, आँच की परवा नहीं करता, जलने से डरता नहीं, परन्तु उसकी आदर्श-प्रेमिकता का फल उसे एक दिव्य ज्योति के हाथो वह अन्धकार मिलता है, जो प्रलयान्धकार से कम नही। ससार के इस प्रकार के अनेक दृश्य है, जो वेदना मय हृदय को विचलित करते रहते हैं, उस पर प्रभाव डालते रहते है, और उसको ऐसे उद्गारो के प्रकट करने का अवसर देते हैं, जो इस 'वेणुकी' नामक पुस्तिका के सम्बल है।"

"ये बाते इस पार अर्थात् प्रत्यक्ष जगत की है, उस पार अर्थात् परोक्ष की बाते अज्ञात है, क्योंकि 'तत्र न वाग्गच्छति न मनोगच्छति'—न वहाँ वचन जा सकता है, न मन, फिर कोई कुछ कहे तो क्या कहे। किन्तु आध्यात्मिक विषेषज्ञो और अनेक तत्वज्ञो ने इधर भी दृष्टि दौडाई है, और कुछ न कुछ कहने का उद्योग किया है। वही रहस्यवाद है, रहस्यवाद की छाया ही छायावाद है। इस समय हिन्दी ससार मे अगरेजी भाषा के साहचर्य से छायावाद की कविता का अधिक प्रचार है, और इस प्रणाली की ओर सुकविगण अधिक आकर्षित हैं। किन्तु खेद की बात यह है, कि इस पथ के पथिक अनेक अनधिकारी भी हो रहे है, जो व्यर्थ अपनी

कविताओ को जटिल बनाकर छायवाद को कलकित कर रहे हैं। उन लोगों का विचार यह है कि कविता जितनी जटिल होगी, वह उतनी ही रहस्यात्मिका समझी जायगी, परन्तु यह उन लोगों का भ्रम मात्र है, जिसका परिणाम अच्छा नहीं हो रहा है। निराशावाद की सृष्टि इसी ने की है। किन्तु श्रीमती तारा पाण्डेय की कविता इन दोषों से रहित है उनकी कविता मे निराशावाद की झलक अवश्य है। पर उसमे कवि कर्म और मर्म स्पर्श है, विषय का सहृदयता से चित्रण है। जटिलता दिखलाई नहीं पडती, प्रसाद गुण ही सर्वत्र लक्षित होता है।"

तारा देवी पाण्डेय दार्शनिक कवियित्री हैं। उनकी वेदना-भावना उच्चकोटि की है। उनकी समस्त रचनाओ मे उनकी असीमित वेदना है। उनकी वेदना मे, उनकी पीडा मे रहस्य की एक ज्योति है, जो हृदय को आलोकित करती है, प्राणों मे प्रकाश का सचार करती है। उनकी वेदना-अभिव्यक्ति बडी सुन्दर है। बड़ी स्वाभाविक है। स्वाभाविकता के साथ ऐसी सुन्दर अभिव्यक्ति अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलती है। वेदना की ऐसी सुन्दर अभिव्यक्ति के लिये तारा देवी की जितनी प्रशसा की जाय, थोडी है। निम्नांकित पक्तियो मे उनकी अभिव्याक्ति देखियेः—

'रोकर खोया मैंने बचपन,
आँसू सा पाया है यौवन,

व्यथित हो गया मेरा जीवन,
पीडा है अपनी ।"

इस 'पीडा है अपनी मे' कवियित्री की कितनी स्वाभाविकता है। इसे कह कर कवियित्री ने आगे और कुछ कहने के लिये छोडा ही नहीं है। यहाँ श्रीमती तारा पाण्डेय का वास्तविक कवि हृदय है। सीधी-सादी पंक्तियों मे उन्होने हृदय की जिस असीमित वेदना को बन्द किया है, उससे उनका कवि कर्म बहुत ही सफल हो उठा है। पाठक आश्चर्य करेंगे, कि कवियित्री पीडा को क्यो इतना प्यार करती है? क्यों वह कहती है, कि पीडा उसकी अपनी है। हम यह लिख चुके हैं, कि तारा देवी दर्शनिक कवि हैं। उनकी पीडा मे एक तथ्य है, एक रहस्य की ज्योति है। कवियित्री अपनी पीडा के उस रहस्य को स्वय प्रगट करती हुई कह रही है :—

मैंने दुख अपनाया !

किन्तु क्यो ? सुनिये—

झरे कुसुम देखें उपवन मे,
अन्त यही सब का जीवन मे,
त्याग एक निःश्वास हृदय से,
मैंने दुख अपनाया ।
अगणित दीप जले अम्बर मे,
अग्नि दहकती सागर-उर में,
जलता दीपक मे पतग भी,

मुझको जलना भाया !
आत्मा के चिर-धन को भूली,
जग के सुख-दुख मे ही भूली,
पानी भर आया आँखो मे,
दुख से मन भर आया।

पाठक, अब समझ ले, कि कवियित्री पीडा को क्यो इतना महत्त्व देती है, और वह क्यो ससार मे वेदना के गीत गाती है। जगत की नश्वरता ने कवियित्री के हृदय को समाकुल बना दिया है। कवियित्री जब जगत के वास्तविक जीवन पर विचार करती है, तब उसका हृदय पीडा से मथ उठता है, और वह फिर जगत मे पीडा को छोड कर और कुछ नहीं पाती। उसकी दार्शनिक दृष्टि इतनी प्रबल हो गई है, कि वह ससार और जीवन की उन अवस्थाओ मे भी, जिनके सम्बन्ध मे लोगों का यह दृढ कथन है, कि वहाँ उल्लास है, वैभव है, उन्माद है, दुख और विषाद का दर्शन करती है। उसकी दार्शनिक आँखो को जगत मे दुख और विषाद के अतिरिक्त कुछ दिखलाई ही नही देता। इसीलिये वह दुख से अपने जीवन का शृगार करने के लिये उत्कठित भी हो जाती है। देखिये:—

"मैं दुख से शृगार करूँगी।
जीवन मे जो थोडा सुख है,
मृग-जल है, उसमे भी दुख है,

छली हुई बहु बार जगत मे,
फिर क्यों अपनी हार करूँगी ?
मै दुख से शृंगार करूँगी ?"

+ + +

मैंने प्राणों मे दुख पाला,
नशा करेगा क्या मधु-प्याला ?
प्रति पल जीवन मे हँस हँस मै,
मृत्यु सग अभिसार करूँगी।
मै दुख से शृंगार करूंगी।

कितनी उच्चकोटि की पंक्तियाँ हैं और इनमे कवि की मौलिकता का कितना अच्छा प्रस्फुटन हुआ है। ऐसी मौलिक पंक्तियाँ हिन्दी-साहित्य मे बहुत कम देखने को मिलती है। यदि मिलती भी है तो उनमे अनुभूति का अभाव रहता है।

यहाँ हमने तारा देवी की कुछ ही पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, किन्तु मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि वेदना-भावना को व्यक्त करने वाली इससे भी उत्कृष्ट पंक्तियाँ तारा देवी की रचनाओं मे विद्यमान हैं। सच तो यह है, कि ज्यो ज्यो मै उनके 'शुक-पिक' और उनकी 'वेणुकी' को पढ रहा हूं, त्यो त्यो मेरे लिये यह प्रश्न अधिक जटिल होता जा रहा है, कि मैं किसे सुन्दर कहू, और किसे असुन्दर। उनकी 'वेणुकी' की रचनाओं को पढ कर मैं तो इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि तारा देवी पाण्डेय हिन्दी-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कवियित्री है। यह एक साहित्यिक पाठक की सच्ची राय है, जो इस समय कवियित्रियों की कविताओं का

अध्ययन कर रहा है। हिन्दी-साहित्य को तारा देवी पाण्डेय की रचनाओं पर गर्व होना चाहिये। तारा देवी की रचनाये गूढ कल्पनाओं के जाल मे न फँस कर भावों के साथ हृदय मे पैठती हैं, और हृदय को अपने में मिला लेती हैं। उनकी सभी रचनाये उच्च कोटि की हैं, और सभी मे उच्च कोटि की भावना है। हृदय-स्पर्शिता का गुण तो इनकी कविताओं में इतना अधिक है, कि वे हिन्दी की प्रमुख से प्रमुख कवियित्री को भी इस दृष्टि से बहुत पीछे छोड गई हैं।

श्रीमती तारा पाण्डेय नैनीताल की निवासिनी है। जब आप दो तीन वष की थीं, तभी आप की माता का देहावसान हो गया। इस रूप मे आपके कवि हृदय को प्रारभ ही से ससार की नश्वरता का परिचय प्राप्त हुआ। आप एक सुशिक्षित, उदार-हृदय और महत्वाकाक्षिणी महिला हैं। नैनीताल के सुयोग्य और विद्वान डाक्टर श्रीयुत पुरुषोत्तम एम० बी० बी० यस जी आप के पति हैं। आप की रचनाओं के अब तक तीन सग्रह प्रकाशित हो चुके है—सीकर, शुक पिक और वेणुकी।

निम्नाकित कविताओ मे आप के काव्य-चमत्कार को देखिये:—

[१]

मैं दुख से शृङ्गार करूँगी !
जीवन मे जो थोडा सुख है,
मृग-जल है, उसमे भी दुख है,

छली गई बहु बार जगत मे,
फिर क्यों अपनी हार करू गी ?
मैं दुख से शृङ्गार करू गी !

दुखियो के आँसू ले-लेकर,
अपने गीले आँचल मे धर,
जग कर निशि मे, उन्हे गूथ मैं,
तारो से व्यापार करू गी !
मैं दुख से शृङ्गार करूँगी !

मै ने प्राणों में दुख पाला,
नशा करेगा क्या मधु प्याला ?
प्रति पल जीवन मे हँस हँस मै,
मृत्यु सग अभिसार करू गी !
मैं दुख से शृङ्गार करू गी !

सुख-दुख दोनो ही आवेगे,
क्रम-क्रम से छवि दिखलावेगे,
इस भिक्षुक जग को सुख देकर,
दुख के सुख को प्यार करू गी !
मै दुख से शृगार करूंगी !

[२]

सजनि सुन, मेरी कहानी !
भर चँगेरी फूल चुन-चुन,
गीत गाये मधुर गुन-गुन,

मुग्ध मेरा सरल बचपन,
अमर वैभव की कहानी !
छोड शय्या मुँह अँधेरे,
बाग मे जाती सवेरे,
कुसुम लाती थी घनेरे,
बालपन की यह कहानी !
वही मेरी पाठशाला,
मै बनाती सुमन-माला
गान गाती मधुप-बाला,
पा गई शिक्षा अजानी !
सजनि, यह छोटी कहानी !

[३]

मै जलती हूँ सखि, मुझको जलना ही केवल भाता !
दीप पतग जले दोनों नित,
किन्तु भिन्न हैं दोना के चित,
दीपक हँसता है, पतग को रोना केवल आता !
सुनती हूँ यौवन है मधुवन,
मुझको कहते होती उलझन,
मैं ने तो उन मधु दिवसों मे पाया दुख का नाता !
जीवन मे है पल-पल जलना,
आँखो के पथ गल-गल बहना,
नहीं जानती चुपके से आ कौन मुझे समझाता !

[४]

मेरे गीतों मे भरी, देव !
पागल-पिक के उर की पुकार !
बन गई चाँदनी अग राग,
भर रही माँग मे नव-पराग,
मेरी आँखो से झरते है, प्रिय,
अश्रु नहीं ये हर सिगार !
केशर से रजित कर दुकूल,
हसती हू खिलते सुभग फूल,
मेरी साँसों मे बहती है,
मधु-ऋतु की मृदु सुरभित बयार !
दो देहो के हम एक प्राण,
गावे जीवन के मधुर गान,
मेरे सूने उर से मिलकर,
मेरे बन जाओ हे उदार !

[५]

वर नहा देते मुझे प्रभु !
शाप भी लू गी नही मैं !
जीतना जाना नहीं तो हार क्यो अपनी करू मै ?
जब मुझे रहना यहीं, क्यों समय से पहले मरू मैं ?
पुण्य यदि दोगे नहीं तो पाप भी लू गी नहीं मै !
वर नहीं देते मुझे प्रभु ! शाप भी लू गी नहीं मै !

जन्म तुमने दे दिया अब जन्म के सुख-दुख सहूँगी,
सफल या असफल रहूँ पर मै न तुमसे कुछ कहूँगी !
तुम न कुछ दोगे मुझे तो आप ही लूंगी नहीं मै !
वर नहीं देते मुझे प्रभु ! आप भी लूंगी नहीं मैं !

[६]

यह जग हाय ! न अपना !
खोज चुकी मैं कोना-कोना,
मिला मुझे तो केवल रोना,
आज हुआ विश्वास पूर्ण यह,
जो कुछ है सब सपना !
अब मिथ्या अभिलाष करू क्यों ?
औरों से कुछ आश करू क्यों ?
बार बार छलते है मुझको,
बीती का क्या कहना !
बहुत दिनो से धोखा खाया,
आज सत्य यह सम्मुख आया,
अमर हुई वेदना हृदय की,
मुझे सुहाया ह मना !
यह जग हाय ! न अपना !

[७]

कैसा सुख ? कैसी मधु-बेला ?
मैने तो अपने प्राणो मे,

देखा दुख का मेला।
बरसा करता सुख बचपन मे,
ज्यो बरसा होती सावन मे,
कहते हैं सब, पर मै ने तो,
आसू से ही खेला।
आता सुन्दर मधु मय यौवन,
नव-नव आशाओ का उपवन,
तब भी रहा हृदय यह मेरा,
विस्मृत और अकेला।
कैसा सुख, कैसी मधु बेला!

[८]

बन गई हुं मै अमर अब,
मृत्यु मेरा क्या करेगी ?
यह नहीं अभिमान मेरा,
है हृदय का सत्य सुन्दर,
शान्ति से स्वागत करू,
वह अक मे मुझको भरेगी।
अमर है ये अश्रु मेरे,
बन गगन के दीप सुख कर,
मै जिऊ गी और
मेरे प्राण की आशा जियेगी।
मधुर-मधु से सुन पड़ेगे,

गीत मेरे सकल दिशि मे,
जीत लूगी मृत्यु को भी,
मुग्ध होकर वह सुनेगी !

[९]

मै अमर हूं, विश्व मे होगे अमर ये गीत मेरे !
आँसुओ से होड करते,
चपल ये तारे गगन के,
हारते आँसू नहीं, चिर-जन्म के है मीत मेरे !
जगत कहता, क्यों व्यथित हो ?
हास मे यह रुदन कैसा ?
हसूँ कैसे ? मधुर दिन तो सब चले है बीत मेरे !
स्वप्न से भरता नहीं अब,
हाय ! मेरा जीर्ण अंचल,
रुक्ष इस जग के सदृश होगे, सदा ये गीत मेरे !
मै नहीं हँसती जगत मे,
देखती हूँ हास शिशु का,
इस मधुरिमा को लिये जीवित रहेगे गीत मेरे !
मै मधुर हू, विश्व मे होंगे मधुर ये गीत मेरे !

रामेश्वरी देवी मिश्र 'चकोरी'

हिन्दी काव्य-साहित्य के नव निर्माण मे हमारे देश की महिलाओं ने अधिक भाग लिया है। महिलाये अपनी स्वाभाविक सरलता, और कोमलता के द्वारा, जो कि काव्य की सफलता के साधन हैं, जिस प्रकार हिन्दी काव्य-जगत मे विश्व-भावना की सृष्टि कर रही है, वह अत्यन्त प्रशसनीय और सम्माननीय है। इन्हीं नव निर्माण कर्त्रियो मे 'चकोरी जी भी थीं, 'चकोरी' जी के लिये यहाँ 'थीं' लिखते हुये हृदय शोक के भार से दबा जा रहा है। चकोरी हिन्दी-साहित्य की एक ज्योति मान किरण थीं। उस किरण का प्रकाश अभी बिखरने भी न पाया था, कि क्रूर काल ने उसे सदा के लिये अधकार के गर्भ मे छिपा लिया। फिर भी अपने थोड़े से जीवन मे 'चकोरी, जी जो कुछ लिख गई हैं, उससे हिन्दी-साहित्य को अच्छा 'प्रकाश, ही मिलता है।

'चकोरी' जी ने वास्तव मे कवि हृदय पाया था। उनका कवि हृदय बहुत ही सुकुमार और विशाल है। उन्होंने अपने



श्री मती रामेश्वरी देवी 'चकोरी'



श्री मती रामेश्वरी देवी 'चकोरी'

है। उन्होंने जिसका चित्रण किया है, उसको बहुत ही निकट से देखा है। यही कारण है, कि उनकी रचनाओं मे हृदय ग्राहिता है, मर्म स्पर्शिता है। उदाहरण के लिये निम्नांकित पक्तियाँ देखिये —

कुछ कहो, कहाॅ से आये हो,
मतवाली व्यापकता लेकर।
मरकत के प्याले मे भर दी,
किसकी मादकता लेकर।
शैशव के सुन्दर आंगन म,
तुम चुपके से आ गये कहाॅ?
भोले भाले चचल मन मे,
लज्जा-रस बरसा गये कहाॅ?

शैशव के आॅगन मे चुपचाप आने वाले यौवन का यह कितना सरल और स्वाभाविक चित्रण है। जिस प्रकार यौवन शैशव के पश्चात् जीवन मे प्रवेश करके जीवन को उन्माद और उल्लास मय बना देता है, उसी प्रकार कवियित्री की उक्त पक्तियों मे भी मन को विस्मृत कर देने की शक्ति है। शक्ति इसलिये है, कि उसमे कवियित्री के हृदय की सच्ची अनुभूति है। यौवन के 'चुपके से' आगमन पर भी कवियित्री ने उसे भली प्रकार देख लिया है। कवियित्री के कहने का ढग बहुत ही सीधा सादा और सरल है, किन्तु उसमे एक चमत्कार है, एक आकर्षण है। उसका हृदय और प्राणो पर बहुत ही मधुर

प्रभाव पडता है। देखिये कवियित्री इसके आगे और कहती है:-

नन्हे मन ने किस भाँति अचानक
आज प्रणय को पहचाना।
अभ्यन्तर मे क्यों सुनती हू,
पीडा का व्यथा-सिक्त गाना।

चकोरी जी ने यहाँ शैशव और यौवन का एक साथ ही बडा सुन्दर चित्रण किया है। ऐसा ज्ञात होता है, मानो चकोरी जी की उक्त पक्तियो मे शैशव और यौवन, दोनों ही अपने अपने वैभव के साथ विराजमान हैं।

यौवन के आगमन पर चकोरी जी शान्त नहीं हो जातीं। वे पुनः हृदय को टटोलती हैं, और उसमे चारों ओर एक आकांक्षा, एक उल्लसित भावना, और उसके साथ ही साथ किसी के न होने का 'अभाव' पाती हैं। नारी जीवन का यह एक गभीर और अनुभव-युक्त अध्ययन है। 'चकोरी जी' के नारी हृदय ने समस्त विश्व के नारी हृदय का अध्ययन किया है, और अपने उस विशाल और तथ्य-पूर्ण अध्ययन को निम्नाकित पक्तियो मे बाँध कर रख दिया है:—

उर अन्तर किसके मिलने को,
अज्ञात भावनाये भर कर,
उन्मत्त सिन्धु सा उबल पड़ा,
अपना लेने किस को बढ कर !

'अभाव' पूर्ण हो जाने पर फिर स्थिति बदल जाती है।

जब 'अभाव' 'पूर्ण' के रूप मे सामने आ जाता है, तब वहाँ दिखाई देता है, आकर्षण, उन्माद। अग-अग मे एक दूसरे को खींचने और एक दूसरे से मिलने की भावना। ऐसी भावना जिसमे अतृप्ति रहती है, और जो सदैव प्यास का अनुभव करती है। कवियित्री को यह आकर्षण बडा ही रहस्यमय ज्ञात होता है। वह स्वय अपने हृदय मे उस आकर्षण का अनुभव करती है, और जिज्ञासु के रूप मे कह उठती है:—

क्या है यह आकर्षण,
कैसा है इसका इतिहास ?
आँखो के मिलते ही बढती,
क्यों आँखों की प्यास ?

अधर खोजते रहते अस्फुट,
अधरो की मुसुकान,
यौवन हाथ पसार माँगता,
क्यों यौवन का दान ?

यही जिज्ञासा इसके पश्चात कवियित्री को दार्शनिक बना देती है। कवियित्री जीवन की विभिन्न अवस्थाओं मे विचरण करती हुई एक सत्य लोक मे पहुँचती है। उसे इस आकर्षण मे, इस प्रेम मे, एक वासना दिखाई देती है। वह अपनी अनुभव-शक्ति से यह समझने लगती है कि यह जीवन के लिये विष है, और उसका हृदय तिल मिला कर कह उठता है:—

इस यौवन के उषा काल मे छिपी साँझ की बेला।

\+ + +

स्वप्नों ने है हाय पिलाया मुझको विष का प्याला।

\+ + +

अब न देखना पगली इस नश्वर यौवन का रग।

इस प्रकार चकोरी जी की रचनाओं मे जीवन की विभिन्न अवस्थाओं मे उत्पन्न हुये प्रेम, विषाद, और उसके पश्चात् दार्शनिक भावो का अच्छा प्रस्फुटन हुआ है। ऐसा ज्ञात होता है, मानो चकोरी जी प्रेम और विषाद की शक्ति से अपनी कविताओं का एक नवीन ससार बसाने जा रही थी, जो कदाचित् साहित्य-जगत मे अमर होता। किन्तु नियति को यह स्वीकार न था, और वे अपने उस अनोखे ससार को भली प्रकार बसा न सकी, किन्तु फिर भी उसकी नीव हमारी आँखों के सामने उसकी एक झलक ला देती है, और जिसे हम देख कर आश्चर्य-चकित हो उठते हैं।

चकोरी जी का कवि जीवन बहुत ही सरल और चमत्कार-पूर्ण है। उन्होंने स्वय अपने कवि जीवन का परिचय इस प्रकार दिया है:—

नाम से हू विदित 'चकोरी' कवि मण्डली मे,
किन्तु न कलकी निशा नाथ से छली हूं मै।
भावुक जनो के मजु मानस-सरोवर मे,
पकज पराग हेतु भ्रमित अली हूँ मै।

विमल विभूति हूँ रसो मे चारु कल्पना की,
काव्य-कुसुमों मे एक नवल कली हू मैं !
भक्ति देवि शारदा की, शक्ति दीन-दलितों की,
'अरुण' सनेही के सनेह मे पली हू मै ॥

'अरुण' जी चकोरी जी के पति है। फिर उनका यह कहना स्वाभाविक ही और चमत्कार-पूर्ण था, कि 'अरुण' 'सनेही के सनेह मे पली हूँ मै'। नही तो, 'चकोरी' भला 'अरुण' को स्नेह की दृष्टि से कहाँ देखती है ? किन्तु नहीं, चकोरी जी, मे यही तो वैचित्र्य है। उन्होने आगे चल कर अपने सम्बन्ध में कुछ और सुन्दर पक्तियाँ लिखी है, जो इस प्रकार हैं:—

खेला करती थी बगिया मे फूलो और तितलियों से।
बाते करती रहती थी अक्सर उन अस्फुट कलियो से।
कितना परिचय था घनिष्ठ नरही की प्यारी गलियों से।

+ + +

किन्तु लगा चस्का पढने का कुछ दिन बाद मुझे प्यारा।
मिली साथिने नयी-नयी वह नूतन जीवन था प्यारा।
मेरे लिये विनोद-भवन, महिला-विद्यालय था सारा ॥

+ + +

महिला-विद्यालय को छोड़ा, नरही की गलियाँ छोडीं।
बगिया-सी विभूति छोड़ी, हँसती प्यारी कलियाँ छोड़ीं।
साथ खेलने वाली वे बचपन की प्रिय सखियाँ छोडीं॥

+ + +

वे अतीत की स्मृतियाँ आकर हाहाकार मचाती हैं।
अन्तरतम मे एक मधुर-सी, पीडा ये उपजाती हैं॥

श्रीमती चकोरी जी का जन्म १९१६ ई० मे उन्नाव जिलान्तर्गत बेन्थर ग्राम मे हुआ था। आपके पिता का नाम पं० उमाचरण जी शुक्ल था। आप तहसीलदार थे। ढाई वर्ष की अवस्था मे ही आपके पिता का देहावसान हो गया, और आप अपने ननिहाल लखनऊ मे नरही नामक मुहल्ले मे आकर रहने लगीं। सन् १९२९ मे आपका विवाह लखनऊ-निवासी प० लक्ष्मीशकर 'अरुण' के साथ हुआ। 'अरुण' जी के सहयोग को पाकर आप की कविता का अधिक विकास हुआ। किन्तु दुःख है, कि आपकी कविता का पूर्ण रूप से विकास न हो पाया, और आप सन् १९३५ के सितम्बर महीने मे स्वर्ग सिधार गई। बल्कि यो कहना चाहिये, कि आपके रूप मे हिन्दी-साहित्य की एक अमूल्य निधि लुट गई।

निम्नाकित कविताओं मे आपकी सुन्दर, सरस और स्वाभाविक काव्य-कल्पना को देखिये —

[१]

एक घूँट

भव सागर के तट पर अजान,
सुनती हूँ वह कल रव महान।
एकाकी हू कोई न सग,
उठती है रह-रह भय-तरग।

केवल यौवन का भार लिये,
बैठी हूं सूना प्यार लिये।
करते बादल हैं अश्रुदान, घन का सुनती गर्जन महान।
आती है तडित चिराग लिये, बिछुडी स्मृति का अनुराग लिये।
बुझ जाता है वह भी प्रकाश
होता है भीषण अट्टहास।
मारुत का वेग प्रचण्ड हुआ,
वह उदधि-हृदय भी खण्ड हुआ।
ओढे काले रँग का दुकूल,
है अन्त-हीन-सा सिन्धु-कूल।
उत्ताल तरगे बढ आइ छूने को मेरी परछाईं,
उन सभ्रम शिथिल झकोरो को ममता-सी मृदुल हिलोरों को,
लेकर सब शून्य उमगों को,
पकडा उन तरल तरगो को,
वह चली त्याग पीडा-विषाद,
होगई बिसुध, मिट गई साध।
सहसा कानो मे उषा-गान
झनझना उठा छू शिथिल प्राण।
सागर की धडकन शान्त हुई वह स्वप्न-नाटिका भ्रान्त हुई।
खिलखिला उठा जग एक बार, आ पहुँचा मेरा कर्णधार।
यौवन कलिका थी जाग उठी,
लहरो की शय्या त्याग उठी।

अर्पण कर प्रेम-पराग मुझे,
नाविक ने दिया सुहाग मुझे।
नाविक की वह पतवार हीन,
नौका थी जर्जर अति मलीन।
द्रुत गति से नौका बहती थी, कुछ मौन स्वरों मे कहती थी!
इस बार तरंगे मचल पड़ीं, तरणी के पथ मे अचल खड़ी!
मैं काँप उठी, उद्‌भ्रान्त हुई,
जर्जर नौका भी श्रान्त हुई!
रक्षक भी मेरा था अधीर,
दृग कोरों से बह चला नीर!
सहसा तरणी जल-मग्न हुई!
छाया-सी क्षण मे भग्न हुई!
प्राची मे अरुण मुसुकराया, लहरो ने प्रलय गान गाया!
मेरा नाविक बह गया कहीं, जीवन सूना रह गया वहीं!
फिर बिखरा दी सचित उमग,
ले गई उसे भी जल-तरग।
मैंने हो पथ-दर्शक विहीन,
कर दिया सिन्धु मे आत्म लीन!
कितना अथाह! कितना अपार!
ले चली मुझे भी एक धार!
छूटे भव-बन्धन, चाह नहीं, हो जाय प्रलय, परवाह नहीं!
जाती हूँ अब उस पार वहाँ, है मेरा प्राणाधार जहाँ!

[२]

यौवन से

कुछ कहो, कहाँ से आये हो—
मतवाली व्यापकता लेकर,
मरकत के प्याले मे भर दी—
यह किसकी मादकता लेकर !
शैशव के सुन्दर आँगन मे,
तुम चुपके से आ गये कहाँ !
भोले भाले चचल मन मे,
लज्जा-रस बरसा गये कहाँ !
ले गये चुरा किस हेतु कहो,
वह जीवन शान्त तपस्वी का,
निष्कपट अलौकिक निर्विकार,
वह जीवन धीर मनस्वी का।
उस छोटे-से नन्दन-वन मे,
जिसमे न पुष्प थे, कलियाँ थीं,
थे भाव नहीं, आसक्ति नहीं,
केवल प्रमोद रँग-रलियाँ थी।
संकुचित कली की पखुरियाँ,
छू चुपके से विकसा दी क्यो ?
सौरभ की सोई-सी अलके,
आसक्त ! कहो, उकसा दी क्यो ?

उस शान्त स्निग्ध नीरवता मे,
प्रलयकर झझावात मचा,
यह कैसा काया-कल्प किया,
यह कैसा माया-जाल रचा!
लज्जा का अजन लगा दिया,
उन चपल हठीली आँखो मे,
ले गये लूट स्वातत्र्य-सौख्य,
हे हठी लुटेरे लाखो मे।
नन्हे मन ने किस भाँति अचानक,
आज प्रणय को पहचाना!
अभ्यन्तर मे क्यो सुनती हू,–
पीडा का व्यथा सिक्त गाना।
उर-अन्तर किसके मिलन हेतु,
अज्ञात भावनाये उठ कर,
उन्मत्त सिन्धु सा उबल पडा,–
अपना लेने किसको बढ कर!
उस सरल हृदय मे यह कैसा,
अभिलाषाओं का द्वन्द हुआ,
उत्थान हुआ या पतन हुआ,
दुख हुआ या कि आनन्द हुआ।
अँग-अग मूक सभाषण की,
यह कैसी जटिल पहेली है,

बतलाओ तुम्हीं, तुम्हारी ही,
उलझाई अखिल पहेली है।

[३]

वाञ्छा

१

इन अरमानो की समाधि पर,
प्रिय ! दो फूल चढा दो,
इस दुखिया का आज एक,
क्षण को तुम मान बढा दो।
स्नेह-शब्द भी नहीं सुना है, जिसने इस जीवन मे।
उसको ही तुम आज प्रेम का सुन्दर पाठ पढा दो !!
हाँ यह प्रेम-समाधि सुखों की केवल मौन कहानी,
जिसे देख कर हँस देती है, यह दुनिया दीवानी !

२

और आज फिर मिट जाने का,
खेल मुझे सिखला दो,
तुहिन-कणो से इस सूने,
जीवन को आज सजा दो !
उषा-काल की अरुण प्रभा से भर दो माँग सजीली !
सन्ध्या के शत-शत रगो का शुभ परिधान उढा दो।
मेरे प्राणों मे फिर हलका प्रेमासव ढुलकाना,
प्रिय ! सोने देना अनन्त निद्रा मे, फिर न जगाना !

[४]

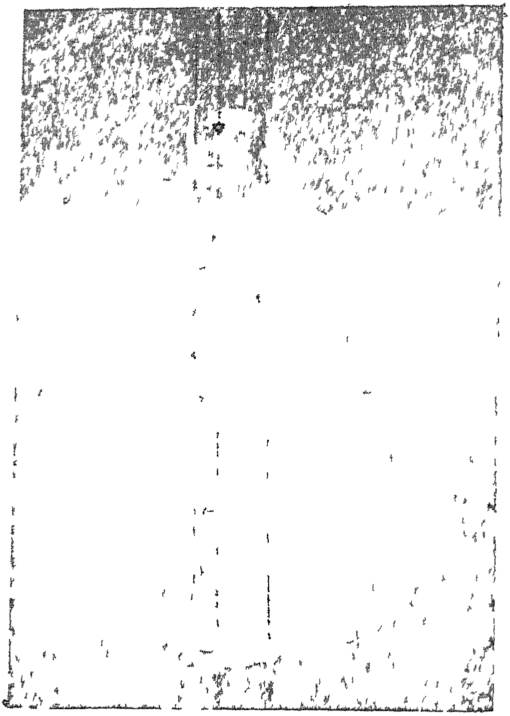
व्यथित विहाग

कितने अटल युगों से सुनती आती हूँ यह बात—
दूर दूर है, अभी दूर है, मेरा स्वर्ण-प्रभात !
हाँ, वह स्वर्ण-प्रभात, छिपा, जिसमें वैभव का ज्ञान,
लुटा चुकी हूँ जिसके स्वागत में अपना सम्मान !
अधिकारों की माँग, दासता का है भीषण पाप,
घात और प्रतिघात पतन के कहलाते अभि शाप।
अविचारी का प्यार बना है, मुझको अत्याचार,
खोज रही हूँ जिसमें इस जीवन का उपसंहार।
कठिन विवशता जब करती अन्तर में हाहाकार,
आकुल नयन लुटा देते हैं तब अपने उपहार।
अभी नहीं सूखे हैं मेरे उर के तीखे घाव,
जिनकी कसक जगाती रहती है विरोध के भाव !
मानवते ! कुछ ठहर, न उकसा छिपी हुई वह आग,
आज शहीदों के शव पर गाने दे व्यथित विहाग।

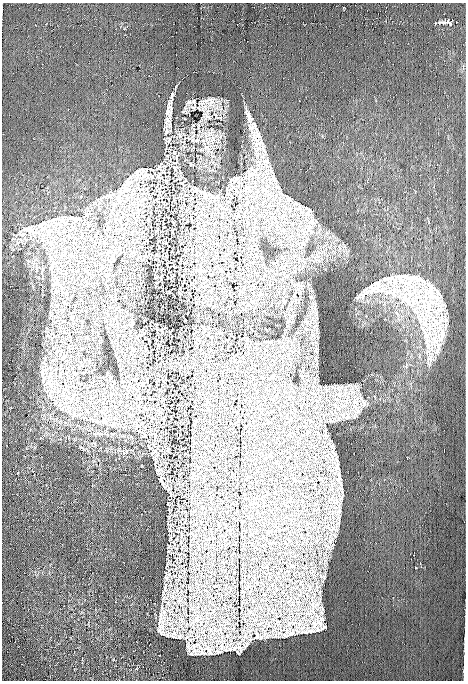
श्रीमती रत्नकुमारी देवी

हिन्दी-साहित्य की नवीन कवियित्रियों मे रत्नकुमारी जी का प्रमुख स्थान है। रत्नकुमारी जी की एक-एक पंक्ति मे जीवन है, प्राणों को छूने की शक्ति है। सुन्दर और उचित शब्दों के द्वारा गुँथी हुई आपकी परिमार्जित भाषा, और विशद भाव हृदय को विमुग्ध कर लेते है। हिन्दी-साहित्य के उस अस्पष्ट-वाद से, जिसमे अनेक कवियित्रियाँ भी बह गई है, आप अपने को सुरक्षित रख सकी है। आपकी रचनाओ मे आपका हृदय है, और है आपकी अनुभूति। आपने अपने अनुभूत भावों का चित्रण बडी ही सुन्दरता और बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ किया है। आपकी काव्य-कल्पनाओं म एक सत्य है, एक कल्याण है। इसीलिये आपकी रचनाओ मे कला का प्रस्फुटन भी अधिक हुआ है, और इसीलिये आपकी रचनाये प्राणों को स्पर्श भी करती है।

आप एक धनाढ्य पिता की सन्तान है। उस पिता की सन्तान है, जिसने राष्ट्र की सेवा के लिये अपना सर्वस्व अर्पण



श्रीमती रत्नकुमारी देवी



श्रीमती रत्नकुमारी देवी

दुर्बलता के सघन तिमिर मे,
ज्योतिमयी आभा भर दे।
अपना भूला मार्ग खोज लूँ,
जिधर छिपी रत्नो की खान।
उनमे से दो-एक बीन लूँ,
आत्मिक बल, जाग्रति उत्थान।
माता के मुरझाये मुख पर,
या तो फिर देखूँ मुसुकान।
या फिर उसके शोक-हरण-हित,
हँस कर कर दूँ निज बलिदान॥

यह एक कवि की कोमल राष्ट्रीय-कल्पना है। इसमे कवि का हृदय है। उसके हृदय की विशालता है। वह अपनी पीड़ित माता के अधरो पर हँसी की ज्योति देखने के लिये अपने को भी मिटाने के लिये तैयार है। इसलिये नही, कि वह उसकी माता है, किन्तु इसलिये, कि वह पीडित है। उसकी पुकार मे 'सत्य' है, सुन्दरता है। उसका हृदय उसी 'सत्य' पर रीझा हुआ है। रीझा हुआ है, इसलिये, कि उसका कवि कर्म जागृत हो उठा है। रत्न कुमारी जी का कवि-कर्म इसी प्रकार सर्वत्र जागृत दिखाई देता है। कविता के विभिन्न उपकरणो को उसने बडे ही कौशल और बडी ही सुन्दरता के साथ ग्रहण किया है।

रत्न कुमारी जी की काव्य-कल्पनाओ का क्षेत्र असीम है। उनकी राष्ट्रीय-भावनाओं मे भी एक प्रकार की असीमता पाई

जाती है। इसका कारण यह है, कि उनके हृदय मे जो कवि है, वह वास्तव मे कवि है। वह समाज और राष्ट्र से अधिक ऊपर उठ कर विश्व को भी देखता है। उस कवि मे दार्शनिकता है। उसने अपनी राष्ट्रीय-रचनाओ मे जहाँ अपनी विशालता का परिचय दिया है। वहाँ उसके दार्शनिक कवि भी बड़े ही ऊँचे और महत्त्व-पूर्ण है। रत्न कुमारी जी के कवि का कोई एक विशेष क्षेत्र नहीं है, उसमे विशेषता यही है कि वह कविता के उपकरणो को देखकर सर्वत्र जागृत हो जाता है। रत्नकुमारी जी के कवि की सी जागृति बहुत कम लोगो मे दिखाई देती है। देखिये, राष्ट्रीय-जगत की तरह दार्शनिक संसार मे भी उनका कवि कर्म कैसा जागृत हो उठा है:—

आली! मत छेडो सुख तान।
मधुर सौख्य के विशद भवन मे,
छिपा हुआ अवसान! आ०!
निर्झर के स्वच्छन्द गान मे,
छिपी अरे! वह साध,
जिसे व्यक्त करते ही उसको,
लग जाता अपराध,
इससे ही वह अविकल प्रतिपल,
गाता दुख के गान।
महा सिन्धु के तुमुल नाद मे,
है भीषम उन्माद,

जिसकी लहरों के कम्पन मे,
है अतीत की याद ।
तडप-तडप इससे रह जाते,
उसके कोमल प्रान !

कितनी सुन्दर पक्तियाॅ हैं, और इन पक्तियो मे कवियित्री के हृदय की कैसी अनुभूति विकसित हुई है। रत्न कुमारी जी की ये पक्तियाॅ किसी भी साहित्य की अमर पक्तियों से टक्कर लेने की समता रखती हैं। इनमे मधुर कल्पना के साथ भावों की जैसी विशालता है। वैसी नवीन कवियित्रियों मे बहुत कम देखने को मिलती है। इन पक्तियो के आधार पर हम यह कहने का साहस कर सकते हैं, कि हिन्दी-साहित्य की प्रमुख कवियित्रियों मे रत्न कुमारी जी का भी एक अपना स्थान है।

भावों की विशालता के साथ ही साथ रत्न कुमारी जी मे कल्पना-वैचित्र्य भी है। उनकी कल्पनाये नितान्त नूतन और चमत्कार से परिपूर्ण है। कहीं-कहीं तो इनकी कल्पना इतनी विचित्र है, कि उसकी जोड की कल्पना हिन्दी-साहित्य भर मे कहीं दिखाई नहीं पडती, और इसीलिये वह अधिक नूतन भी है। देखिये:—

कोकिल के गानो पर,
बन्धन के हैं पहरेदार,
कूक-कूक केवल बसन्त में,
रह जाती मन मार,

अपने गीत-कोष से जग को,
देती दुख का दान। आ० !

कोकिल की कूक के सम्बन्ध मे कवियित्री ने कैसी नवीन कल्पना खोज कर निकाली है। कोकिल के कूकने और उसके मन मार कर रह जाने मे कवि हृदय का एक सत्य है, उसकी वेदना का एक इतिहास है, जो मधुर है, हृदय-स्पर्शी है। कवियित्री ने अपनी इस नूतन कल्पना के द्वारा जिस वेदना की ओर सकेत किया है, वह उसके विशाल हृदय और व्यापकता की परिचायिका है।

रत्नकुमारी जी की काव्यप्रतिभा सर्वतोमुखी है। उनमे करुणा है, वेदना है, दार्शनिकता है, भावुकता है। उनकी सुलझी हुई भावुकता जिन भावों को लेकर उडती है, उन्हीं को ठीक-ठीक पाठकों के हृदय मे व्यक्त भी करती है। साधारणतः भावुक कवि अस्पष्टवादी और निगूढ जगत का जीव होता है, किन्तु रत्नकुमारी जी की भावुकता इन दोषो से सर्वथा रहित है। इसका कारण यही हो सकता है, कि उनकी भावुकता मे भी एक दार्शनिक 'सत्य' है, और उन्होने उस दार्शनिक 'सत्य' का भली भाँति अनुभव कर लिया है। देखिये:—

लतिका के आनन पर क्यों ?
झलका अन्तर्दाह ?
तरु क्यों पत्र अधर कम्पन से,
भरते नीरव आह ?

सान्ध्य गगन की मलिनाकृति से,
क्यो प्रगटित अवसाद ?
श्यामल भूधर झींगुर रव मिष,
क्यों करते दुख-नाद ?

इसी प्रकार कवियित्री ने आगे चल कर एक स्थान पर और लिखा है·--

हृदय हीन होने पर भी है,
कितना यह सहृदय व्यापार।
प्रकृति सुन्दरी सत्य बता दे,
किससे पाया इतना प्यार।

वास्तव में बात तो यह है कि रत्नकुमारी जी का कवि स्वयं अधिक सहृदय है। इसीलिये उनकी कविताओं मे सहृदयता का अधिक समावेश भी हो गया है। उन्हे प्रकृति का एक एक व्यापार अधिक सहृदय दिखाई देता है। मानों वे प्रकृति की सहृदयता को अपने गीतो मे भर कर मानव जगत के सम्मुख एक 'चिर सत्य' उपस्थित कर रही हैं। कवियित्री की इस महत्त्वाकांक्षा की जितनी प्रशसा की जाय, थोड़ी है। कवियित्री ने विभिन्न प्रकार की काव्य-कल्पनाओ के द्वारा अपनी महत्त्वा-कांक्षा को कहीं कहीं इतनी सुन्दर, उत्कृष्ट और कला-पूर्ण पंक्तियों में वद्ध किया है, कि उन्हें देख कर यह कहना ही पडता है, कि कवियित्री धीरे-धीरे विश्व-साहित्य की ओर अग्रसर

हो रही है, और हिन्दी जगत मे विश्व भावना की सृष्टि करके उसे अधिक गौरवान्वित बना रही है।

श्रीमती रत्नकुमारी जी मध्यप्रान्त के सुप्रसिद्ध नेता, और हिन्दी के सफल नाटककार जबलपुर निवासी सेठ गोविन्ददास जी की सुयोग्य पुत्री हैं। सेठ जी स्वय भी कवि और सुप्रसिद्ध नाटककार हैं। आपने अपने नाटकों की रचना करके हिन्दी के नाट्य साहित्य को अधिक गौरव प्रदान किया है। आपकी ही साहित्यिक सस्कृति का रत्नकुमारी जी के हृदय पर भी प्रभाव पड़ा हुआ है। रत्नकुमारी जी भी आप ही की भाँति श्रेष्ठ कवि-यित्री होने के साथ ही साथ कहानी-लेखिका और नाटककार हैं। कविता ही की भाँति आपकी कहानियाँ भी बडी उच्च कोटि की, और हृदय-स्पर्शी होती हैं। आप बडी सहृदय, भावुक, और विचारशीला हैं। आपने संस्कृत की 'काव्यतीर्थ' परीक्षा भी पास की है। सस्कृत के ज्ञान ने आपकी काव्य-प्रतिभा को अधिक बलवती बना दिया है। आपकी रचनाये सुललित, भाषा परि-मार्जित, और भाव गँठे हुये होते हैं। आपकी रचनाओ का 'अकुर' नाम से एक सग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

निम्नांकित कविताओ में रत्नकुमारी जी की काव्य-प्रतिभा देखिये—

[१]

इतना प्यार

जब निदाघ से तापित होता,
उर्वी का उर अपरम्पार,

उमड-घुमड कजरारे वारिद,
सिंचन करते शिशिर फुहार।
जब तम-पट में मुँह ढँक राका,
रोती गिरा अश्रु-नीहार,
सुभग सुधाधर-उसे हँसाता,
कलित कलायें सभी प्रसार।
सरोजिनी का मृदुल बदन जब,
नत होता सह चिन्ता-भार,
दिन कर कर स्पर्श से उसमे,
करता अमित मोद सचार।
सरिताओं के जीवन पर जब,
करता तपन कठोर प्रहार,
व्योम-मार्ग से उदधि भेजता,
उन तक निज उर की रस-धार।
कठिन पवन के झोंको से जब,
होता विकल मधुप सुकुमार,
कमल-कली झट उसे बचाती,
आवृत कर निज अन्तर्द्वार।
हृदय हीन होने पर भी है,
कितना यह सहृदय व्यापार,
प्रकृति सुन्दरी सत्य बतादे,
किससे पाया इतना प्यार!

[२]

नीरव आवास

यह मेरा नीरव आवास,
पर्वत-माला के अंचल में इसका सतत निवास !
स्नेह स्निग्ध श्यामल तरु वलियाँ,
फैला छाँह गँभीर,
विटप-करो के मृदु कम्पन से,
देती सुरभि समीर।
शैल-श्रेणि के उर से निकली,
प्रेम-पगी रस-धार,
इस पर अविरल सिंचन करती,
अपनी अमल फुहार।
वार-वार अम्बर मणि पर जब,
ऊषा प्रात.काल,
बडे-बडे आभा मय मोती,
बिखराती भर थाल,
इसके आस-पास आकर वह,
अतुलित निधि भण्डार,
सुकुमारी दूर्वा के उर का,
बनता चचल हार।
अम्बर मे आती जब सन्ध्या,
राग भरा सज साज,

उसके रँग मे रँग ही जाता,
अविचल शैल-समाज ।
जब रजनी का सस्मित मुख-शशि,
बिखराता आलोक,
हीरक-सी हिम-राशि सुन्दरी,
हँस उठती अवलोक !
जग की अविकल कल कल से जो,
मानस होते श्रान्त,
खग को निभृत नीड सी इसमे,
मिलती शान्ति नितान्त ।
यहाँ न क्रान्ति श्रान्ति है कुछ भी केवल सतत विकास,
यह मेरा नीरव आवास !

[३]

जिज्ञासा

छल छल करिता सरिता मे क्यो,
छल का करुण प्रवाह ?
निर्झर क्यो झर झर बिखराता,
नयन नीर का वाह ?
लतिका के नत आनन से क्यो,
झलका अन्तर्दाह ?
तरु क्यों पत्र-अधर-कम्पन से,
भरते नीरव आह ?

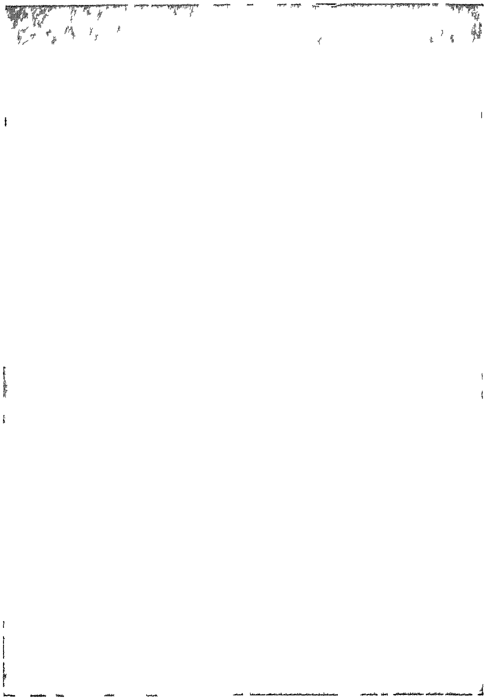
हृदय धूम मे तम मे क्यों है,
आवृत अवनी अग ?
व्यथा भार से होता क्यों यह,
पवन गमन मे भग ?
सान्ध्य गगन की मलिनाकृति से,
क्यों प्रकटित अवसाद ?
श्यामल भूधर झीगर रव मिष,
क्यो करते दुख नाद ?

[०]

मयूरी नर्तन

नभ के प्रदेश मे जल धर,
फैलाते अपना आसन ।
अधिकार जमा क्रम-क्रम से,
दृढ करते अपना शासन ।
आच्छादित धीरे धीरे,
है हुआ गगन अब सारा ।
लघुतम प्रदेश भी घन के,
जालो से रहा न न्यारा ।
अपने अति प्रिय जलदों को,
ला अतुल समुन्नति धारी ।
है मुग्ध मयूरी मानस,
ले हर्ष हिलोरे भारी ।

अंगों में अन्तर्हित कर,
निज चपल चित्त चावों को।
यह दर्शाती नर्तन से,
अति अभिनन्दन भावों को।
भाग-प्राप्ति की उस समृद्धि में,
इस को चाह नहीं है।
केवल लख प्रिय-वैभव इसको
सुख की थाह नहीं है।



रामकुमारी देवी 'चौहान'

रामकुमारी देवी चौहान

हिन्दी की श्रेष्ठ और उदीयमान कवियित्रियो मे रामकुमारी चौहान जी का एक विशेष स्थान हैं। आप की रचनाये प्राणो को स्पर्श करती हैं। उनमे वेदना है, अनुभूति है। कहीं-कहीं तो वेदना के साथ करुणा इतनी छलक पड़ी है, कि मन अपने आप उस पर लुट जाता है। वेदना के साथ करुणा का चित्र खींचना रामकुमारी जी की एक अपनी विशेषता है। आपकी वेदना विश्व के गीत गाती है, आपकी करुणा मानव हृदय को 'सत्य' का सन्देश देती है। उसमे दार्शनिकता के साथ ही साथ जीवन का तत्त्व भी है, और है उस ढङ्ग से, जिसे कविता की भाषा मे कवि की स्वाभाविकता कहते हैं। शब्द शब्द मे, पंक्ति पक्ति मे, स्वाभाविकता की छटा है। ऐसा ज्ञात होता है, मानो शब्दों और पक्तियो मे, वास्तव मे, किसी का पीड़ित हृदय झन-झनाहट उत्पन्न कर रहा है! देखिये :—

> एक ही उच्छ्वास मे
> उमडे दुखों के भार कितने!

+ + +

अश्रु कण मे खेलते शिशु-
प्रेम के सुकुमार कितने !

कितनी सजीव, सुन्दर, और करुण कल्पना है। रामकुमारी जी की समस्त रचनाये इसी ढग की करुण, और व्यापक कल्पनाओ के पथ पर उडती हुई दिखाई देती है। ऐसा ज्ञात होता है, मानो सचमुच कवियित्री का हृदय ससार के घात-प्रतिघातों से पीडित है, मानो सचमुच ससार की नश्वरता ने उनके हृदय मे ऐसी कर्कश पीडा उत्पन्न की है, कि उससे उनके प्राणों के तार-तार झन झना उठे हैं। रामकुमारी जी की कविता मे उनके प्राणों की यही झनझनाहट है।

हिन्दी-साहित्य के सुयोग्य लेखक श्रीयुत होरीलाल जी शास्त्री आपकी कविताओ के सम्बन्ध मे लिखते हैं:—"आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। कविता के मुख्य गुण तल्लीनता और रसात्मकता तो आपकी रचनाओ मे कूट-कूट कर भरे हैं। साथ ही साथ जीवन की विभिन्न परिस्थितियों मे घटित होने वाली घटनाओं का ससृष्ट चित्रण भी नितान्त चित्ताकर्षक बन पडा है। उनमे भावुकता है, सवेदना है, और सबसे ऊपर अपने चित्त को रमा लेने वाली कल्पनाओं का समावेश, और भाषा-सौष्ठव तो आपकी निज की सम्पत्ति है। अलकारों का प्रयोग भी केवल कविता के वाह्यरूप को सजाने के लिये ही नहीं हुआ है, किन्तु वह रसका यथेष्ट रूप में परिपाक करता हुआ चित्त को उस अनन्त की ओर खीच ले जाता है, वाह्य व्यापार

जिसकी एक लघु झलक और प्रतिबिम्ब मात्र है।"

रामकुमारी चौहान का जन्म सवत् १८५६ ई० में अगहन कृष्ण ६ को कानपुर के सीसामऊ मुहल्ले मे हुआ। आपके पिता कानपुर ज़िले के पचोर ग्राम मे चन्द्रवशीय राज घराने मे उत्पन्न हुये थे। यह परम विद्यानुरागी, मुक्त योगी, सुयोग्य ज्योतिषी, और अच्छे कवि थे। आप अपने माता-पिता की तीसरी सन्तान हैं। आपके एक सहोदर भाई, और बहन भी है। इन दोनों की भी साहित्य की ओर अभिरुचि है।

आपको बाल्यकाल ही से कविता और सगीत से प्रेम है। प्रकृति के मनोरम दृश्यो का अवलोकन करने मे आपको बड़ा आनन्द आता है। आपकी रचनाओ मे भी कहीं कहीं आपकी इस अभिरुचि का पता चलता है। बाल्यकाल ही से आप कवितायें भी कर रही है। आपकी कवितायें दिनो दिन विकसित हो रही है, और उनमे हृदय-स्पर्शिता के गुण अधिक परिमाण मे आते जा रहे है।

आपका विवाह झाँसी-निवासी श्रीयुत ठाकुर रत्नसिह जी बी० ए० एल-एल० बी० से हुआ था। मनोहर और अनुकूल वातावरण पाकर आपके उल्लसित हृदय की कामनायें विकसित हो उठीं, और वे कविता के प्रवाह के रूप मे बह चलीं। किन्तु कुछ ही दिनो के पश्चात् उनकी दिशा बदल गई, और कल्पनाओ ने उल्लास के स्थान पर वेदना की चादर ओढ ली। इसका कारण यह था, कि ससार की परिस्थितियो का इनके

जीवन पर कर्कश प्रहार होने लगा। नियति ने पहले इनके पिता को छीन लिया, फिर इनकी एक मात्र सन्तति को, और फिर इनके सर्वस्व को। नियति के इन्हीं कर्कश आघातो के कारण इनकी कविता का प्रवाह बदल गया। इनकी रचनाओं मे, जो दार्शनिक वेदना का अधिक पुट है, कदाचित् यही इसका कारण भी है। इस समय आप झाँसी मे एक स्कूल मे प्रधान अध्यापिका हैं।

आपकी रचनाये हिन्दी की सभी श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित होती हैं। आपकी रचनाये बडे सम्मान के साथ पढी जाती है। 'निश्वास' के नाम से आपकी कविताओ का एक सग्रह भी प्रकाशित हुआ है। सवत् १९९६ मे आपको इसी पुस्तक पर पॉच सौ रुपये का सेकसेरिया पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। आप हिन्दी-साहित्य की अमर ज्योति है। हिन्दी साहित्य आपकी रचनाओ के प्रकाश से दिनों दिन आलोकित होता रहे, यही एक मात्र कामना है।

निम्नांकित कविताओ मे आपकी काव्य-प्रतिभा और आपका कल्पना-चमत्कार देखिये:—

[१]

कल्पना

उर जगत मे कल्पना के गूँजते है कितने तार,
प्रति लहर मे मिट गये हा शोक के ससार कितने!

हृदय का निर्झर सजल इस शर्वरी मे नृत्य करता,
विधुर विधु किरणे सजातीं मोतियों के हार कितने !
पलक ने पुतली छिपा कर विश्व का अनुराग लूटा,
एक ही उच्छ्वास मे, उमडे दुःखों के भार कितने !
विकस आई आज बे-सुध शुष्क नीरस उर-कली क्यों,
अश्रु-कण म खेलत शिशु-प्रेम के सुकुमार कितने !
हृदय का मन्दिर रचा, अनुराग की प्रतिमा सजाई,
साधना-आराधना के मृदुलतम शृगार कितने !
आज वैभव शालिनी-सी, बन गई, उर-वह्नि-ज्वाला,
दीप्तिमय आ जगमगाये, शक्ति के सचार कितने !
धूल से विकसित हुये जो, धूलहि मे मिल गये वे,
हृदय तल पर आँक जाते सरस कोमल प्यार कितने !
विश्व मे ताण्डव मचा कर, क्रान्ति-सी नि:शान्ति डोली,
एक कण में भर गये ससार के विस्तार कितने !

[२]

आभास

कामना के कुमुद-वन मे कौन-सा मधुमास आया,
विकल उर की विपुल पीड़ा मे नवीन विकास आया।
शून्य आशा-यामिनी मे, रजत किरणे मुसुकुराई,
चन्द्र मादक रश्मियों से चाँदनी के पास आया।

[३]

अश्रु कण

हो रही है वेदना-सी आज मानस मे हमारे,
छोड कर पीडा हृदय की अश्रु आये नयन द्वारे !
आज जाने क्यों द्रविन हो व्यर्थ ही यह चू पडे हैं,
कौन-सी विस्मृति व्यथा से मौत-सी, हैं आश धारे !
रजत राका यामिनी यह, सकुचित मन मजु मेरा,
निरख सुललित नयन-पुतली, टूट पडते व्योम तारे।
आज कर-वर से न पोछो, तुम इन्हें सताप मेरे,
हैं यही दुखिया जगत के, एक आश्रय, एक प्यारे।

[४]

मेरी समाधि

नहीं लालसा नीरद बरसे, मृदु फुहार की फुलझडियाँ।
या अम्बर से तुहिन-विन्दु सी, बिखरे मोती की लडियाँ॥
नहीं कामना शशि की शीतल किरणो का हो कान्ति प्रवाह।
दग्ध हृदय की चिर अतृप्ति मे मिटे मिलन की दारुण दाह॥

आकांक्षा यह नहीं कि, इस पर विकस उठे वे मुकुलित फूल।
जिनके परिमल मय पराग पर अकित है पतझड की धूल॥
अभिलाषा यह नहीं बनूँ उस प्रेमी का आदान-प्रदान।
योग वियोग आदि की जिसमें तरल व्यथा का रहे न मान॥

नहीं चाहती जीवन मेरा बन जाये सुख का सगीत ।
छिप जाये गत मधुर स्मृति की करुण कथा का जगत अतीत ॥
नहीं कामना रखती हूं कुछ कोई मेरा गुण गाये ।
या समाधि पर मेरी आकर सुरभित फूल चढ़ा जाये ॥

राज राजेश्वरी देवी 'नलिनी'

हिन्दी-साहित्य की उदीयमान कवियित्रियों में 'नलिनी' जी का प्रमुख स्थान है। आपकी रचनाओ मे आपके समुज्वल भविष्य का एक बहुत सुन्दर प्रकाश छिपा हुआ है। आपकी रचनाओं के क्रम-विकास पर ध्यान देने से यह ज्ञात होता है, कि आपके कवि जीवन का वह समुज्वल भविष्य शनै: शनैः हिन्दी-साहित्य के अधिक सन्निकट आता जा रहा है। यदि आपके विकास-मार्ग मे किसी प्रकार की बाधा न उपस्थित हुई, तो इसमे सन्देह नहीं, कि थोडे ही दिनों मे हिन्दी की प्रमुख कवियित्रियों मे आपका एक स्थान हो जायगा, और आपकी रचनाये हिन्दी-साहित्य की एक स्थायी सम्पत्ति बन जाँयेगी।

आपकी रचनाये वेदना प्रधान हैं। आपने अपने हृदय के अनुभूत भावों को बडी ही सुन्दरता के साथ अपनी रचनाओं मे व्यक्त किया है। आपकी वेदना-सम्बन्धी कल्पनाये नवीन, आकर्षक और निष्कलक-सी हैं। उनमे स्वाभाविकता है, सरसता है, और है हृदय को खींचने की शक्ति। वेदना को आप



राज राजेश्वरी देवी 'नलनी'



राज राजेश्वरी देवी 'नलनी'

सम्बन्ध मे ठीक ही यह लिखा है, कि 'नलिनी' जी हिन्दी साहित्याकाश मे एक उस तारिका के समान है, जिसकी ज्योति मे स्थायित्त्व है, अमरता है।

'नलिनी' जी की रचनाओ मे काव्य के सभी गुण तो विद्यमान है ही, साथ ही आपकी रचनाओं मे हृदय की विशालता अधिक अश मे है। आपकी काव्य-कल्पना का क्षेत्र सीमित नही, असीमित है। इसका एक मात्र कारण केवल यह है, कि जिस वेदना को आप अपने जीवन की सखी समझती हैं, और जिसके आह्वान मे करुण-राग गाती है, उसमे दार्शनिकता है। आप की वेदना सम्बन्धी अधिकांश कविताओ मे आपके दार्शनिक भावों का अच्छा प्रस्फुटन हुआ है। आप अपनी कोमल काव्य-कल्पना के द्वारा जिस प्रकार दार्शनिक-जगत के रहस्य को भेदने का प्रयास करती हैं, वह बहुत ही सम्माननीय और प्रशंसनीय ह। निम्नाकित पक्तियों मे आपके दार्शनिक भाव का सुन्दर विकास हुआ है.—

किसने अनन्त पीडा का,
उपहार अनूप दिया है!
अज्ञात कौन, वह ?
जिसने यह निष्ठुर खेल किया है!

+ + +

पूजा का कुछ साज नहीं है,
देव, आह! दुखिया के पास।

किन्तु हार मे सचित है,
मम सरल स्नेह की सरस सुवास ॥

\+ + +

तुम बनो देव आराध्य मेरे,
निर्माल्य मुझे बन जाने दो।
निज चरणों के ढिग आने दो,
मुझ को निज साध मिटाने दो !

'नलिनी' जी की जन्म-भूमि उन्नाव जिले में है। आपके पिता का नाम प० रमाशकर प्रसाद बी० ए० है । 'नलिनी' जी ने अच्छी शिक्षा पाई है। बाल्यकाल ही से आपका कविता की ओर झुकाव ह। आपने वास्तविक कवि-हृदय पाया है। आपकी रचनाये हिन्दी की सभी सुप्रसिद्ध मासिक पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती हैं। आपकी रचनाओं मे कला के साथ ही साथ मधुरता और सरसता का अच्छा पुट रहता है। प्रमाण स्वरूप निम्नांकित कविताये देखिये —

[१]

वेदने !

अभ्यन्तर के निभृत प्रान्त मे,
प्राणों की सरिता के कूल !
खूब वेदने ! बाल खेल,
नयनो से बिखरा आँसू फूल।

आज हमारे प्रणय जगत में,
सजनि ! तुम्हारा है आह्वान।
है आराध्य-अभाव यहाँ तू,
आ अभाव की मूर्ति महान।

मृदुल हृदय परिरम्भण कर तू,
कर सहर्ष हे सजनि ! विहार।
जीवन के उजड़े निकुंज में,
भर दे निज वैभव का भार !

अरी ! चयन कर ले अंचल में,
सुभग साधना-कुसुम पराग।
चपल चरण से कुचल मसल कर,
गा तू अपना तीखा राग।

[२]

साध मिटाने दो !

आँसू की तरल तरंगों में आहों के कण बह जाने दो।
उस क्षुब्ध अश्रु की धारा में उच्छ्वास-तरणि लहराने दो॥
ऊषा की रक्तिम आभा से लोचन रंजित हो जाने दो।
अन्तर्वीणा को व्यथा-भरी बस करुण रागिणी गाने दो॥
सुनती पीडा में व्याप्त प्रभो ! मुझको पीडा अपनाने दो।
निज प्राण-विभव से मुझे देव ! निज चरण अलंकृत करने दो॥
पीडा से करके प्यार मुझे अपने ही में मिल जाने दो॥
वैसे तुमको पाना दुष्कर ऐसे ही तो फिर पाने दो॥

तुम बनो देव आराध्य मेरे निर्माल्य मुझे बन जाने दो ।
निज चरणों के ढिग आने दो ! मुझको निज साध मिटाने दो ॥

[३]

गीत

प्रिय बड़े सुकुमार कोमल,
यह मधुर अरमान मेरे !
हों किसी को शाप, मुझको—
तो यही वरदान मेरे !
रे कुशल कवि विश्व के तू !
छू न गीले गान मेरे !
विकल सब हो जायँगे—
युग-युग के अनुष्ठान मेरे !
हों अप्रिय जग को भले ही,
प्रिय मुझे अरमान मेरे !
निधन उर की जीर्ण झोली,
की विभूति महान मेरे !
तारकों की यूथिका से—
पुहुप से वन वीथिका मे !
देव ! शतदल से खिलेंगे,
यह मृदुल अरमान मेरे !
थक गये हैं खोजते जिसको—
विकल यह गान मेरे !

शून्य से मिल कर सिसकते,
तिरस्कृत आह्वान मेरे।

हो गये पाषाण वह तो,
प्रेम के भगवान मेरे।
वह दिवस भी हो गये है,
आज स्वप्न अजान मेरे ।।

शेष है स्मृति चिह्न उनका,
वह मधुर अरमान मेरे !
पहर भर के प्रिय मिलन की,
है यही पहचान मेरे !

[४]

कुसुमाकर !

मानस-मधुवन मे आया है सजनि ! आज वेदना-वसत।
विपुल व्यथा की सकरुण सुषमा छाय रही है आज अनन्त ।।
करुणा-कोकिल सुना रही है, अपना विह्वल विकल विहाग।
नयन-कली की मृदु प्याली मे भरा हुआ है अश्रु-पराग ।।
चलता है उच्छ्वास-मलय-नैराश्यो की सौरभ के साथ।
ढुलका रहा विषाद हृदय की हाला भर-भर दोनो हाथ ।।
अन्तर के छाले पलाश-वन-सम शोभित है अरुण अपार।
व्याप्त हो रहा है मधुमय पीड़ाओं के वैभव का भार ।।

+　　　+　　　+

कितना सुन्दर कुसुमाकर का विश्व-कुज मे आ जाना।
पर कितना मादक मेरे मधुवन मे उसका मुसकाना ॥

[५]

मधुर मिलन

गोधूली के अचल मे,
छिप गई सुनहली ऊषा।
दिनकर चल दिये विदा हो,
खुल गई गगन मजूषा ॥

२

सूने अम्बर पर बिखरीं,
निशि की विभूतियाँ सारी।
राका-राकेश-मिलन की,
आयी थी मधुमय बारी ॥

३

मुसुकाती इठलाती-सी,
कामिनी विभावरी आई।
जग-शिशु मुख पर उसने निज,
अलकावलियाँ बिखराईं ॥

४

वह सूने पन की रानी,
सूनापन लेकर आई।

सारी संसृति में उसकी,
मुसुकान मनोहर छाई ॥

५

निज वैभव पर गर्वित हो,
हँसती थी रजनी-बाला ।
आये फिर कर में लेकर,
निशिनाथ सुधा का प्याला ॥

६

सारी संसृति में शशि ने,
स्वर्गीय सुधा ढुलकाई ।
चहुँ ओर असीम अलौकिक,
अनुपम मादकता छाई ॥

७

करता था जग अवगाहन,
शशि-सुधा सुभग लहरों में ।
उल्लास असीम भरा उन,
अह्लादों के प्रहरों में ॥

८

गाती निशि निज वीणा पर,
नीरव संगीत निराला ।
श्रुति-पुट में रस सरसा वह,
जग को करता मतवाला ॥

९

मेरा हिय उलझ रहा था,
उद्‌गारो की उलझन में।
रह-रह पीड़ा होती थी,
अभिलाषा के कंपन मे॥

१०

आशाओं के फूलो की,
बिखरीं पखड़ियाँ प्यारी।
उच्छ्‌वासों के झोंकों मे,
उड़ गई आह! वह सारी॥

११

व्यथा सुषुप्त करवट मे,
हो उठी प्राण मे तड़पन।
प्राणों की पागल पीड़ा—
मे हुआ आह! मूच्छित मन॥

१२

तब शान्ति मयी निद्रा मम,
गीली पलकों पर छाई।
इस करुण दशा पर मानों,
उसको थी करुणा आई॥

१३

दे शान्ति मुझे उसने यों,
स्वप्नो के साज सजाये।

धन मेरी आशाओं के
उसने मुझको दिखलाये ॥

१४

निशि की काली अलकों मे,
जो श्यामल वेष छिपाये–
वह करुणा मय थे मेरे,
मृदु स्वप्न जगत मे आये ॥

१५

सुख सीमा हुई अपरिमित
देखा जब प्रिय मानस-धन ।
कृत कृत्य हो गई करके,
करुणामय का शुभ दर्शन ॥

१६

उपमा क्या हो सकती है,
कोई मेरे उस सुख की ।
असमर्थ जिसे कहने मे,
हो जाता है सत्कवि भी ॥

१७

उन पद-पद्मों मे तत्क्षण,
निज मानस-पुष्प चढाया ।
बनकर उपासिका स्वयमपि,
उनको आराध्य बनाया ॥

१८

उस क्षण-सुख में जीवन का,
सारा उल्लास खिला था।
उल्लासों के अंचल मे,
पीड़ा का सार छिपा था॥

१९

ऊषा के अवगुंठन मे,
छिप गया सुनहला सपना।
मेरे सुख की लाली ले,
शृंगार किया हा, अपना॥

पुरुषार्थवती देवी

पुरुषार्थवती देवी हिन्दी के काव्य-गगन की एक जाज्वल्यमान तारिका थीं। उनके प्रकाश मे स्थिरता थी, एक प्रकार की अमरता थी। यदि नश्वर जगत उन्हे अपनी नश्वरता मे छिपा न लेता, तो इसमे सन्देह नहीं, कि वे हिन्दी-साहित्य में अमर होकर रहतीं। ये पक्तियाँ उनकी रचनाओं मे झलकती हुई ज्योति के आधार पर लिखी जा रही है। उनकी रचनाओं मे उनकी ऊँची कल्पना है, उनका विशाल हृदय है। उनकी कल्पनाये नवीन, सरस, और निष्कलक हैं। उनमे प्राणों का स्पर्श करने की शक्ति है। वे हृदय के जिन आवेगो को लेकर उड़ती है, उन्हे पढने वाले के हृदय मे भी उत्पन्न करती है। उनकी रचनाओं की यह सबसे बड़ी विशेषता है। वे अपने भावों के प्रवाह मे पाठको के हृदय को जिस प्रकार बहा ले जाती हैं, वह उनके कवि-जीवन को महत्त्व प्रदान करने वाला एक विशेष साधन है।

पुरुषार्थवती देवी जी की रचनाओ मे एक प्रकार का दुःख

वाद है। उनकी समस्त रचनाये दुःखवाद की छाया मे करुणा का राग अलापती हुई दिखाई देती हैं। असमय मे ही काल-गर्भ मे चली जाने के कारण यद्यपि उनके दुःखवाद का उचित विकास और उचित प्रस्फुटन न हो सका किन्तु जो कुछ है, वह विशाल है। विशाल इसलिये है, कि उसमे एक रहस्य है, दार्शनिकता है। उनके दार्शनिक भाव वेदना और करुणा के साथ मिलकर बहुत ही मर्मस्पर्शी बन गये है।

आपकी रचनाओ की समालोचना करते हुए मासिक विश्व मित्र मे एक सुप्रसिद्ध समोलोचक ने लिखा है·—'पन्त' जी के पल्लव और 'वीणा' के बाद हिन्दी की कविताओ का ऐसा अच्छा सकलन हमे कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिला। हमे अत्यन्त खेद तथा लज्जा के साथ स्वीकार करना पडता है, कि लेखिका के नाम से और उनकी कविताओं से हम आज पहले-पहल परिचित हुये हैं। एक आश्चर्यमयी प्रतिभा शालिनी स्त्री कवि ऐसी सुन्दर, सरस, और भावुकता पूर्ण कविताओं को लिखकर इह लोक से सिधार भी चुकी और हम उसके नाम से भी परिचित न रहे, इस अक्षम्य दोष के लिये हमारी उदासीनता बहुत कुछ अश मे दायी हो सकती है। तथापि हिन्दी के उन "प्रोपेगण्डिस्ट" आलोचको का भी इसमे कुछ कम दोष नहीं है, जो अपने किसी विशेष गुट्ट के लेखक अथवा लेखिकाओ की प्रशसा मे "अहो रूप महो ध्वनिः" के नारे लगाते रहते हैं और पक्षपात-हीन होकर वास्तविक योग्यता की खोज

नव यौवन का मद मतवाला फिर फिर बजते तार ।
इस तन पर निसार होता था अलि का जीवन-सार ॥
यह परिहास हास, जिसमे था पाया पूर्ण विकास ।
समझ न सकती थी मैं इसमे भी है क्षीण विनास ॥
ऊँची डाली पर देखा था यह विस्तृत ससार ।
अब क्षिति के उजडे दिल में है खोजा इसका क्षार ॥
खुले हुये थे जग भर के हिय मैं थी उनका हार ।
किन्तु शेष है अब तो केवल पौरुष, पाद-प्रहार ॥
आह ! याद करके क्या होगा अपना गत सगीत ।
भूल जायँ विस्मृतियों मे ही मेरे राग-पुनीत ॥
सुनी अनसुनी करदो, मेरी नीरस करुण पुकार ।
जाती हूँ वेदना भरे मन से अनन्त के द्वार ॥

[२]

मीठा जल बरसाने वाले

नील वर्ण की चादर डाले घुमड-घुमड कर आने वाले ।
नगर, गाँव, गिरि-गह्वर, कानन निज सन्देश सुनाने वाले ॥
तू ने देखा सभी ज़माना, पहला गौरव भी था जाना ।
वर्तमान तू ने पहचाना, लुटा चुके हम सभी खज़ाना ॥
दिन खोटे आये जब अपने, सुखद दिनों के लेने सपने ।
साहस बल सब कुछ खोकर हम स्वार्थ-माल ले बैठे जपने ॥
ऐसा अमृत जल बरसा दे, तप्त दिलों की प्यास बुझा दे ।
वीरो का सन्देश सुना दे, हमको निज कर्त्तव्य सुझा दे ॥

हे स्वच्छन्द विचरने वाले, हे स्वातन्त्र्य-सुधा-रस वाले ।
हम को भी स्वाधीन बना दे, मीठा जल बरसाने वाले ॥

[३]

प्रश्न

सान्ध्य गगन की ललित लालिमा, विहग-वृन्द का कलरव गान ।
शीत, मन्द, शुचि मलय-प्रभजन, किसकी अहो दिलाते याद ॥
बाल-सूर्य की किरण राशियाँ उषा सुन्दरी का नट-वेष ।
चपल सरित की अविरत कलरव देते क्या अतीत सन्देश ॥
निशा काल का नीरव गायन सुप्त-विश्व की मुद्रा मौन ।
चन्द्रदेव की मृदुल रश्मियाँ क्या कह देती हैं—मैं मौन ?
व्यथित हृदय-तंत्री झंकृत कर कौन अहो गाता है गान ।
किस अतीत की याद दिलाकर बेसुध कर देता, अनजान ॥

[४]

दलित कलिका

मुझे देख कर खडे हँस रहे, विकसित सुन्दर फूल ।
करते हो परिहास हास, तरु शाखाओं पर झूल ॥
हाव-भाव से अपने जग को देते सरस सुवास ।
मुझे-देख गर्वित हो करते किन्तु व्यंग उपवास ॥
यदपि धूल-धूसिता बनी मैं हूँ सौन्दर्य-विहीन ।
भूमि शायिनी, पदा क्रान्त हो हुई कान्ति द्युति-हीन ॥
नव जीवन का उषःकाल था, कुसुमित यौवन-उपवन ।
रस-लोलुप मधुकर दल करता था सहर्ष आलिंगन ॥

विशद नील नभ से करती थी चन्द्र-सुधा-रस-पान ।
मन्द अनिल से आन्दोलित हो, गाती नीरव गान ॥
गर्व, दर्प सब खर्व हुआ अब, गिरी, हुई हत-मान ।
करुणा-क्रन्दन है केवल अब होने तक अवसान ॥
हो गर्वित, उन्मत्त विटप पर झूम रहे हो फूल ।
मुझे देख, फूले हो, जाना निज अस्तित्त्व न भूल ॥

[५]

दर्शन-लालसा

नाथ ! पड़ा सूना मन-मन्दिर कब उसको अपनाओगे ।
नेत्र थक गये राह देखते कब तुम फिर से आओगे ॥
हूं पगली मतवाली या मैं फिर भी हूं चरणों की दास ।
प्रेम-तरंग हिलोरें लेती आओ एक बार फिर पास ॥
मानस-सर के हंस तुम्हीं हो, हो मेरी तन्त्री के तार ।
मेरी जीवन-नैय्या के हो कर्णधार, पकड़ो पतवार ॥
देकर झूठे धैर्य नाथ ! अब नहीं मुझे ठग पाओगे ।
देर करोगे तो क्या होगा, शून्य कुटी को पाओगे ॥



रामेश्वरी देवी 'गोयल'



रामेश्वरी देवी 'गोयल'

के लोक मे विचरण करता था। आपकी रचनाये निराशा और पीडा की भावनाओं से ओत प्रोत है। आपकी अनुभूति सुन्दर और अभिव्यक्ति आपके उज्वल भविष्य की परिचायिका है।

गोयल जी सन् १९११ के फरवरी महीने मे झाँसी मे पैदा हुई थीं। १९३० मे प्रयाग विश्व विद्यालय से आपने एम-ए० की परीक्षा पास की। एम-ए० की परीक्षा पास करने के पश्चात् आप प्रयाग आर्य कन्या पाठशाला की प्रधान अध्यापिका हो गई, और दो-तीन वर्ष तक इस पद पर रहीं। इसी समय आपका विवाह हुआ, और आप विवाह के कुछ ही दिनों पश्चात् अपने परिवार के साथ ही साथ हिन्दी-जगत को सूना करके इस संसार से चल बसीं।

आपको कविता और संगीत से अधिक प्रेम था। कविता और सगीत के अध्ययन मे ही आप अपना अधिकांश समय व्यतीत करती थीं। विद्यार्थी अवस्था से ही कविता की ओर आपकी अभिरुचि थी। आपकी रचनाये दिनो दिन विकास को प्राप्त हो रही थीं। हिन्दी की सभी सुप्रसिद्ध मासिक पत्र-पत्रिकाओ मे आपकी रचनाये छपती थीं, और सम्मान के साथ पढी जाती थीं। निम्नांकित कविताओ मे आपकी काव्य-कल्पना का अच्छा प्रस्फुटन हुआ है:--

[१]

तुम्हारी सजीवन मुसुकान,
जगा देती मद का ससार।

पुलक, भावुक नभ भी अनजान,
लुटा देता अपना शृंगार ।
लुभा लेता तटस्थ के प्राण,
बिछा मायावी मुक्ता जाल,
बना देता पागल-सा कौन,
व्यथा की अविकल मदिरा ढाल ।
अमित कलियों का कोमल गात,
ढूँढ़ता व्याकुल हो विश्राम ।
सुला लेता सुधाशु निज अंक,
बिछा कर शीतलता अभिराम ॥
छोड जाता आँसू कोई-
दुखद-सा स्वप्न, दीन नैराश्य ।
पोंछ लेता चुम्बन मे एक,
हँसा जाता प्राची का हास्य ॥
किन्तु मानस का टूटा तार,
छेदते रहते आकुल प्राण ।
स्वप्न-सा खो जाता मतिमान,
सुखद जीवन का सुमधुर गान ॥
न आने देता पुनः बसन्त,
छेड कर अपनी आकुल तान ।
ढहा देता आशा के स्वप्न,
बहा देता विवेक नादान ॥

[२]

सजनि ! है यह कैसा पागलपन !
नीरव आँधी शून्य गगन मे,
मचल मचल वह जाती।
शुष्क अधर की सचित लाली
झर झर झर झर जाती॥
न रहता है किंचित अपनापन,
सजनि ! है यह कैसा पागलपन।
नयन हठीले सो सो जाते
मधुमय के मधुवन मे।
मन भावन आकर खो जाते
स्वप्नो की उलझन मे॥
न खोने पाता यो सूनापन,
सजनि, है कैसा यह पागलपन !
पीडा मय तन्द्रा मे भी सखि,
याद उसी की आती।
निठुराई, निर्मम के उर
चुभती, पर खोज न पाती॥
सजनि, क्या ऐसा ही है बन्धन ?
सजनि है यह कैसा पागलपन ?

[३]

तुम्हारा भोला-सा उपहास,
भेद जब जाता तन मन प्राण,

अधर की रिझती-सी मुसुकान,
नयन छलका देते नादान ॥
अरे अनजान प्रेम का मोल,
मधुरिमा मय विकसित अनुराग,
समझ, सौंपा सर्वस सुकुमार,
आह ! पीडा दी किसने घोल ?
समझ कर किसने उस ठठोल ?
किया विच्छिन्न दान निर्माल्य
अरे उस प्रेमी की उद्‌भ्रान्त-
'चाह की आह' हाय ! दी खोल !
राग से सीखा आज विराग,
हास्य का मृदु अवगुठन डाल,
वेदना सिसक-सिसक कर हाय,
न जर्जर कर दे यह अभिसार !
गूँज जावे तब वह परिहास,
पिघल ढल सो जावे विश्राम
कहीं पा फिर तेरा आभास,
न उठ जावे वह ललक-ललाम ।

[४]

झिल मिल करते थे तारे,
आशा के सूने नभ में ।
मलयानिल-सी निश्वासें,

उठती थी अन्तस्तल मे ॥
उर की निरन्त पीडा ने,
सोता उन्माद जगाया ।
अपने कम्पित हाथो से,
वीणा को आन उठाया ॥
हाँ तार सभी उसमे थे,
निर्दय ! तू ने क्यों तोडा ?
ज्यों-त्यों मैंने फिर उसको,
कर यत्न बहुत था जोडा ॥
उन आँखो की मदिरा से,
भर कर अवदान कटोरा ।
होठो तक ही लाई थी,
तू ने आ क्यों झकझोरा ॥
बजती कैसे अब वीणा,
टूटी ध्वनि निकली उससे ।
हो खिन्न दिया मैने भी,
रख दूर उसे निज कर से ॥
वह जीवन आ जीवन थी,
प्रतिध्वनि करती थी निशि दिन ।
बैठा रोता है अब तो,
यह भग्न हृदय उसके बिन ॥

[५]

आशा-हीन दलित पडे जो दीन भूतल में,
जीवन की ज्योति नव्य उनमे जगाती तू।
शोक नत भारत के भव्य भाल को समोद,
शान्ति का पढा के पाठ धीरे से उठाती तू।
त्याग का बना के मत्र धैर्य का सिखा के तत्र,
देशवासियो को आज योगी है बनाती तू।
दकर सुबुद्धि 'शक्ति' भव्य भारतीयता की,
विजय पताका देवि ! आज फहराती तू।

छूट रहा जग, भूला जीवन,
यों उन्मत्त बनाया।

निराशावाद की ये उच्च कोटि की पक्तियाँ साहित्य-जगत मे 'मजु' जी की स्थिरता के लिये पर्याप्त हैं। 'मजु' जी की कविताओं का अभी तक कोई सग्रह नही प्रकाशित हुआ है, किन्तु उनकी जो स्फुट कविताये हमारे सामने हैं, उनके आधार पर हम यह कह सकते है, कि 'मजु' जी का कवि वास्तविक कवि है। उसमे कवि प्रतिभा है, कवि कर्म को जागृत करने की शक्ति है। अधिक दुख के साथ यह लिखना पडता है, कि आज कल 'मजु' जी ने लिखना कम कर दिया है। यदि वे बराबर लिखती रहतीं, और उनकी काव्य-कल्पना को विकाश के साधन उपलब्ध होते, तो इसमे सन्देह नही, कि वे अपने इस स्थायित्त्व को और भी अधिक दृढ़ बना लेतीं।

'मजु' जी सफल कवियित्री होने के साथ ही साथ सुन्दर लेखिका भी है। आपके लेख बहुत ही सुलझे हुये और भाव-पूर्ण होते है। आपकी 'मीरा मन्दाकिनी' नाम की एक पुस्तक भी हमे देखने को मिली है। इस पुस्तक मे मीरा के पदों पर आपने जो प्रकाश डाला है, वह स्तुत्य है।

श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव का जन्म १९०३ ई० के अगस्त महीने मे एक सुप्रसिद्ध कायस्थ कुल मे हुआ था। आपके परिवार के लोग बडे प्रतिष्ठित और शिक्षित हैं। आपने

भी अच्छी शिक्षा पाई है। आपके विचार बड़े ऊँचे, और परिमार्जित हैं।

नीचे हम आपकी कुछ रचनायें उद्धृत करते हैं—

[१]

वन सन्ध्या

गरज घुमड कुछ बरस चुके,
जब थकित हुये वर वारिद वे—
तब सान्ध्य गगन की लाली में,
सौन्दर्य बिखेरा गिरिवर ने।

रजत, स्वर्ण, नीले पीले,
मुक्ताम श्याम नारजी से,
कासनी अबीरी सिन्धूरी,
औ हरित बैजनी साड़ी से—

अद्भुत शृंगार बनाये वह,
चढ़ चली प्रकृति अवनी उर पर।
बन-बीहड वाथिन भरीं सभी,
अनुराग राग की लाली से।

तब छोड क्षितिज से पिचकारी,
वसुधा की छाती रँगने में।
तल्लीन मुग्ध दिव शेष हुये,
सौभाग्य पिटारी गिरी महाँ।

कल कल निनाद से पूरित हो,
बन मेदिनि राग अलाप उठी।
पक्षी-कुल कलरव गुंजन से,
नीरव उपत्यका गूँज उठी।

इस प्रेमालिंगन चुम्बन में,
इस प्रेम-फाग कल क्रीडन में,
कब सन्ध्या हुई न जान सके,
कब वियोग की घडी घुसी।

हा हन्त ! भाग्य दुर्दैव बली,
सौभाग्य सूर्य हा छोड चला,
तारों मिस ताक उठी रजनी,
जली चिता ज्वाला धधकी।

बढा धुआँ सागर उमडा,
व्याकुल हो पक्षी चीख उठे,
स्तम्भित दीन हुये सभी,
चुपचाप बहे रोते-रोते।

असहाया दीना प्रकृति हुई,
कुन्तलित केश, खोले रोई,
थी चली मिटाने बिरह-व्यथा,
रजनी ने आकर कैद किया।

विलख विश्व सब: मौन हुआ,
मुँदे नैन आँसू छलके,

तम का आवर्तन बढ आया,

जा डूबी सन्ध्या सागर मे।

[२]

भ्रान्ति

छाया प्रकाश की यह नित यवनिका गिराना,
यो लालसा बढा कर फिर खेलना मिचौनी।
सीखा कहाँ था, तुमने, जड को सचेत करना,
उसको सदा सजाना दे हार आँसुओ का।

सच देव तुम बडे हो पक्के छले खिलाडी,
कण-कण उड़ा उडा कर ब्रह्माण्ड को मिटाते।
रज-कण मिला-मिला कर, फिर विश्व को रचाते,
रविकर, यथा सलिल कण फिर सब समेट लेते।

हम दौडते पकडने तुम दूर भागते हो,
हम दूर जा भटकते, पाते तुम्हे निकट ही।
जग पूछता अहर्निश तुम कौन हो पहेली?
मदिर व मस्जिदों को तेरा पता मिले क्या?

हैरान हम हैं तुमसे, पायें कहाँ तुम्हे अब,
कुछ भी न सोच पाते, तम मे सदा अकेले।
इस प्राण और जग का अणु-अणु बना है प्यासा,
करुणा की बूँद ही कुछ देती पता तुम्हारा।

इससे ही रो रहे हैं आओगे क्या कभी तुम?
इस ओर नाथ तेरे पद्-पद्म क्या पडे गे?

सज्ञा ही सारी डूब गई ।
गिरि माला के पर कोटे मे,
आ ठीक क्षितिज की छाती पर,
तम का अवगुठन ऊँचा कर,
रजनी ने झाँका प्रियतम को ।

\+ + +

ऊषा ने जब आँखे खोलीं,
तब क्लान्त चन्द्र सोता पाया,
शर्मायी आँखों से नलिनी,
झट ताक छिपी वन गह्वर मे ।



मगला 'बालूपुरी'

मंगला बालूपुरी

हिन्दी-साहित्याकाश से अभी एक जाज्वल्यमान तारिका झिल मिला कर सदा के लिए उससे विलीन हो गई। उसकी उस झिल मिलाहट से ही जो एक प्रकाश-रेखा हमारी आँखों के सामने खिंच गई है, वह उसके सुन्दर और उज्वल भविष्य की सूचना देती है। ऐसे सुन्दर भविष्य की सूचना देती है, जिसमे साहित्य की अमरता होती, देश और समाज की सेवा के लिये होती उत्कट भावना ! उस तारिका के नाम से सारा हिन्दी-जगत भी परिचित होगा,—श्री मंगला बालूपुरी। मंगला जी एक उच्च कोटि की कवियित्री थीं। यों तो उनके हृदय मे देश के प्रति प्रगाढ़ भक्ति भी थी, किन्तु हिन्दी-जगत उन्हे एक उच्च कोटि की कवियित्री ही के रूप मे जानता है। वे थोडे ही दिनो तक हिन्दी-जगत के रंगमंच पर रह पाईं, किन्तु इतने दिनो मे ही उन्होंने जो कुछ लिखा है, उससे उनके हृदय के कवि का भली भांति परिचय मिल जाता है। वह कवि वास्तविक कवि था। उसकी कल्पनायें कोमल और सरस तो थी ही,

'सत्य' और 'सौन्दर्य' की भावना से लसी हुई थो। दुख है कि वह कवि, जिस हृदय में स्थित था, वह पक्षी की भांति अपने कूचे से निकल कर ससार से उड़ गया।

मगला जी की कुछ थोडी सी ही कवितायें हमें प्राप्त हो सकी हैं, किन्तु जो प्राप्त हो सकी हैं, उन के आधार पर हम निश्चय रूप से यह कह सकते हैं, कि मगला के रूप मे स्त्री-कवि-साहित्य का एक बहुत बडा 'कल्याण' ससार से लुट गया। 'मगला' यदि संसार मे रह पातीं, तो इसमे सन्देह नहीं, कि स्त्री-कवि-साहित्य को उनसे एक नया जीवन मिलता। आश्चर्य है, असमय मे ही मुरझा जाने वाली इस कवियित्री की कविताओ का कोई सग्रह प्रकाशित न हो सका। यह इस दृष्टि से अधिक आवश्यक है, कि कवियित्री की रचनाओ मे हमे एक ऐसी अमरता दिखाई देती है, जो कविता-जगत के गौरव पर एक सुन्दर झलक उत्पन्न कर सकती है। भाव की दृष्टि से, भाषा की दृष्टि से, और कल्पना की दृष्टि से भी कवियित्री मे एक सुन्दर वैचित्र्य है। ऐसा वैचित्र्य है, जिसमे जीवन है, जागृति है, और है प्राणो को प्राणवान बनाने की शक्ति। देखिये क्या यह सत्य नही है:—

मेरे नयनो के मोती कन
आकुल उद्भ्रान्त बने झरते,
ये मेरे धन पल पल छन छन,

+ + +

मेरी अब सहचरी बनी है,
आँसू की मृदु माला,
कब हाथो से छूट गया,
औचक सुख-रस का प्याला ।

इसी प्रकार मगला जी की सपूर्ण रचनाओं मे उच्च कोटि के भाव परिलक्षित होते हैं। किसी-किसी रचना मे दार्शनिकता की सुन्दर झलक भी दिखाई देती है।

हमारे राष्ट्र और साहित्य के लिये काशा का एक परिवार गौरव की वस्तु बन गया है। विविध विषयो के काण्ड पडित श्री सम्पूर्णानन्दजी के नाम से समूचा देश और सारा साहित्य-ससार परिचित है। उनके छोटे भाई, हास्य रस के माने हुए लेखक, श्री अन्नपूर्णानन्द जी और प्रतिभाशाली पत्रकार श्री परिपूर्णानन्द जी भी हिन्दी के गौरव है। उनके सुपुत्र श्री सर्वदानन्द जी वर्मा की पैनी कलम भी हिन्दी-ससार का ध्यान पर्याप्त आकृष्ट कर चुकी है। ऐसे परिवार और वायुमडल मे आज से लगभग २० वर्ष पहले एक झिलमिल तारिका का उदय हुआ मगला के रूप मे। मगला श्री अन्नपूर्णानन्द जी की प्रथम सतान थीं। जन्म के लगभग साल ही भर बाद आपकी माता जी का देहान्त हो गया। शुरू मे आपका लालन-पालन अपने नाना, रायबहादुर मुशी कामताप्रसाद रिटायर्ड दीवान बीकानेर की देख रेख मे उन्ही के घर होना प्रारभ हुआ, किन्तु होश सँभालते ही आप अपने घर आ

गयीं। बचपन दादी की गोद मे बीता। परिवार मे मगला की प्रतिभा और हाज़िरजवाबी की चर्चा होने लगी। स्कूल मे दाखिल हुई, पर अभी प्रारभिक कक्षाएँ भी न पार कर पायी थीं कि पिता ने, जो आधुनिक ढग की स्त्री शिक्षा के कट्टर विरोधी हैं—हालाँ कि आप बरसो विलायत मे रह चुके है—आपको स्कूल से उठा लिया। घर ही पर हिन्दी अगरेजी और इतिहास आदि की शिक्षा प्रारभ हुई। किशोर अवस्था मे पदार्पण करते करते आपकी उक्त विषयो मे काफी पैठ हो गयी और तभी आपने कलम उठाया। आपकी शुरू की रचनाये जबलपुर से प्रकाशित तथा आपके चाचा श्री परिपूर्णानन्द जी द्वारा सम्पादित 'प्रेमा' मे निकलती रहीं। इसी बीच लगभग १६ साल की अवस्था मे २८ जून १९३४ का आपका विवाह यशस्वी युवक पत्रकार, लेखक, और कवि श्री सुरेन्द्र बालूपुरी से हो गया। तब से आपने नियमित रूप से निरन्तर लिखना शुरू कर दिया। आपने इतनी छोटी सी उम्र मे लगभग २० प्रौढ कहानियाँ, दर्जनो लेख और अनेक कविताएँ लिखी है। आपकी कृतियो का सम्पूर्ण सग्रह शीघ्र ही निकल रहा है। आप गत अगस्त १९३८ मे युक्त प्रान्तीय काग्रेस सरकार द्वारा बलिया मे आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त की गयी थीं। पर जब आपके चाचा माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी ने मन्त्रिपद से तथा आपके पति श्री सुरेन्द्र बालूपुरी ने प्रान्तीय सरकार के पत्रकार-पद से इस्तीफा दे दिया, तब

आपने भी वृटिश सरकार की भारत-सम्बन्धी युद्ध-नीति से असन्तुष्ट होकर त्याग पत्र दे दिया।

आप इधर पिछले साल भर से बीमार थी और उसी सिलसिले मे आपका गत १२ मई १९४० को देहान्त हो गया। लखनऊ के सभी बडे से।बडे डाक्टरों ने आपकी चिकित्सा की किन्तु बेकार।

आपके दोनो बच्चे, कुमार प्रकाश बालूपुरी और कुमार अशोक बालूपुरी, बडे ही होनहार है।

निम्नांकित कविताओं आपकी प्रतिभा की झलक देखिये:—

[१]

चित्रकार से–

जग-चित्रपटी के चित्रकार
तेरी लीला अपरम् अपार

नभमण्डल की नीलिमा सुघर
वसुधा की हरीतिमा मनहर
चाँदनी शुभ्र यह धवल-धवल
उषा का स्वर्ण दुकूल नवल

सब तेरी तूली के निहार
हे चित्रपटी के चित्रकार

सरसो का बासन्तिक सुहाग
मेरे अन्तर की अरुण आग
यह रुचिर इन्द्रधनु सतरगा
यह झिल-मिल झिल-मिल स्वर्गङ्गा

सब तेरे ही शाश्वत विचार
जग चित्रपटी के चित्रकार

आश्चर्य चकित है मेरा मन
लख तेरा अद्भुत कला-भवन
है शैशव की मुसकान कहीं
है यौवन का अभिमान कहीं

तुम अजब अनोखे कलाकार
हे चित्रपटी के चित्रकार

है कोई मूर्ति बिलखती सी
है कोई मूर्ति विहसती सी
तुम रंग साज तुम मूर्ति कार
हे ललित कला के कर्णधार

तुम कुशल चितेरे निराकार
जग चित्रपटी के चित्रकार

[२]

अतीत-स्मृति

मेरी छोटी सी दुनिया में हँसती व्यथा अकेली,
कसक सिसक बन कर आती शैशव की रंगरेली,
वे निर्बन्ध उमङ्गे जी की बनी स्वप्न की बातें,
जाने कहाँ विलीन हुई बचपन की हँसती रातें,
मेरी अब सहचरी बनी है आँसू की मृदु माला,
कब हाथों से छूट गया औचक सुख-रस का प्याला,

अब तो उस सपने के दिन की स्मृति ही बनी सहेली,
अचरज होता है सुन कर मै भी थी हँस हँस खेली ।

[३]

वीर-पत्नी

बलिवेदी को बलिपन्थी वीरो की टोली चली सजी,
जाओ तुम भी रणक्षेत्र मे वह देखो दुन्दुभी बजी,
आओ कुकुम केसर तिलक लगा दू तुम हुकार उठो,
नाश नाश के भैरव रव मे सत्यानाश पुकार उठो,
अरे कहा क्या ? मृत्यु ! सुनाते हो भीषण भवितव्य मुझे,
पर जावो कहने को प्रेरित करता है कर्त्तव्य मुझे,
अगर सुनूगी मेरा प्रियतम रण मे अमर शहीद हुवा,
तो समझू गी मेरा जीवन प्यारे परम पुनीत हुवा,
फिर ? फिर तो फूटेगी वह घर घर से जौहर की ज्वाला,
अमृत मय हो जावेगा बन्दी जीवन का विष प्याला ।

[४]

मेरे नयनो के मोती कन-

आकुल उद्भ्रान्त बने झरते थे मेरे धन पल पल छन छन,
हूँ रोक रही जितना ही इनको अपनी पीडित आँख मूद,
बह रहे फफोले फूट फूट बन कर आँखो से तरल बूद,
जिस जीवन को सीचा प्रिय न देकर अपना हँसता दुलार,
कैसे सहले ? वह उनका ही रे इतना भीषण तिरस्कार,
मत बहलावो प्रिय बातों मे कर लेने दो हलका अब मन,
उफ ! बरसावो मत प्यार यार जल जावेगा नन्हा जीवन ।

श्रीमती सावित्री देवी

आप हिन्दी-साहित्य की कवियित्रियो मे धीरे-धीरे एक विशेष स्थ न प्राप्त कर रही है। आपकी रचनाये बड़ी सुन्दर और भाव-पूर्ण है। नवीन कविता-जगत मे आप जिस प्रतिभा को लेकर आई है, आशा है, उस के द्वारा हिन्दी मे स्थायी स्त्री-साहित्य की सृष्टि हागी। आपकी कवि पतिभा मे बल है, सोचने, समझने, और भावों पर दृष्टि डालने की अच्छी शक्ति है। सर्वोच्च शिक्षा ने आपकी कवि-प्रतिभा को और भी अधिक विकसित कर दिया है। आपकी कल्पनाये बडी उच्च और व्यापक है। उनमे अनुभूति है, मौलिकता है। हृदय के अनुभूत भावों को व्यक्त करना आप भली प्रकार जानती है।

आपकी काव्य-कल्पना का आधार दार्शनिक जगत है। जीवन, सृष्टि, और प्रकृति के मध्य मे जो 'सत्य' स्थित है, आप उसी का चित्रण करती हैं। आपकी दार्शनिक कल्पनाये मानव जगत के सन्मुख एक प्रकाश लाने का प्रयत्न करती है। उस



श्री मती सावित्री देवी



श्री मती सावित्री देवी

ए० की परीक्षा पास की है। आप के पिता श्री एम०-वी० सिह कई भाषाओ के पडित और सुयोग्य विद्वान हैं। हिन्दी काव्य साहित्य से आपको भी अधिक प्रेम है।

निम्नांकित पक्तियों मे श्रीमती सावित्री देवी का काव्य चमत्कार देखिये'—

मधु-प्याली

मधु-प्याली मेरे जीवन की है, खाली मेरे साकी!
विश्वाश न हो तो आ देखो, है नहीं जरा मदिरा बाकी।
इस मधु जा पर ही मधु-ऋतु मे मै ढूढ रही हूँ मधु शाला,
पर नहीं पता पाती क्षण क्षण, बढ़ती जाती जी की ज्वाला।
मै नहीं खोजती वह शाला, मद जहाँ लोग करते हैं क्रय,
मेरा मदिरालय तो अनन्त, जिसमे सब रस होते है लय।
मेरा साकी, सब का साकी, मेरी हाला सब की हाला,
है समता का साम्राज्य यहाँ मेरी शाला सब की शाला।
मै व्यर्थ खोजती थी साकी, तू सदा पास ही था मेरे,
बस, सरस स्नेह मधु ढाले जा, यह मधु-प्याली सम्मुख तेरे।

आप की छोटी बहन कुमारी सरस्वती 'सुधा' भी हिन्दी-साहित्य की एक होनहार कवियित्री हैं। 'सुधा, जी ने भी एम० ए० की परीक्षा पास की है। और साथ ही सकृत का भी अधिक ज्ञान प्राप्त किया है आपकी रचनाओं मे भी कविता के अनेक गुण विद्यमान हैं। आपकी काव्य-कल्पना मे व्यापक भावना का समावेश है। अनुभूति और अभिव्यक्ति भी आप

की सुन्दर है। अपनी बडी बहन की भाँति आप मे भी दार्शनिक भावों को चित्रण करन की शक्ति है। आप की भाषा परिमार्जित, और भाव गठे हुये होते हैं।

निम्नांकित कविताओं मे आप को उज्वल कवि-प्रतिभा की झलक देखिये.—

[१]

नीराजना

वह प्रेम-ज्योति अपार है,
कैसे करूँ नीराजना ?
निज प्राण-दीपक-दीप्ति से,
क्या कर सकूँगी साधना ?
निज स्नेह से ही सींच यदि,
दीपाभ मैं जाग्रत करूँ,
क्या साध्य होगी प्राणप्रिय,
आराध्य की आराधना ?
यदि प्रेम के उन्माद में,
उर-तंत्रिका मम बज उठे,
क्या सुन सकेंगे प्रेम-धन,
मम प्यार का झंकारना।
वह प्रेम-मूर्ति महान है,
अति क्षुद्र मेरे प्राण हैं,

पर प्रेम मय मे लीन हो,
मम मूल्य बढ जाना घना ।
प्रभु-प्रेम-पारावार पर
निज प्रेम सारा वार कर,
अति साध से बन साधिका,
की दीप माला साजना ।
क्रमश रुकी नीराजना,
मन की मिटी मम मूर्च्छना
तज्ज्योति ने प्राणाभ का
पूरा किया जब बाँधना ।
एकात्मता तब हो गई,
किसकी करू नीराजना ?
प्रभु-प्रेम-प्राणित प्राण तो,
गति-हीन भूले नाचना ।

[२]

सूनी कुटी

सूनी-सी पर्ण-कुटी है,
सूनी है रहने वाली,
वेदना समझता था जो,
वह किधर गया प्रिय माली ?
निष्ठुर मम आशा-मग मे,
छाया है निपट अँधेरा,

है ज्ञात नहीं, कब मुझको,
सत्संग मिलेगा तेरा !
नैराश्य-निशा-घड़ियों का,
क्या अब अवसान न होगा ?
कुल तम मय जीवन-वन में,
क्या प्रेम-विहान न होगा ?
सुकुमार कुसुम-सा जीवन,
लेकर जगती मे आई,
अपने स्वर्णिम स्वप्नों की,
दुनिया थी अलग बसाई ।
पर बसते उजड रही है,
यो बस्ती अरमानो की,
है ध्वनित चतुर्दिक पीड़ा,
अवसाद-भरे प्राणों की ।
इस विरह-तप्त जीवन से,
तन-तरु यो मत झुलसाओ,
देकर दर्शन-रस शीतल,
कुसुमित अब इसे बनाओ ।
प्यारा वसन्त छाया है,
प्रत्येक तरुण डाली पर,
सखि, स्नेह-लता सिंचन को,
आया न इधर माली, पर ।

होमवती देवी

हिन्दी-साहित्य की कवियित्रियो मे होमवती जी का विशेष स्थान है। आप की रचनाओं मे स्थायित्त्व है, साहित्य को प्राण देने की क्षमता है। आपकी रचनाये आपके नारी हृदय की अभिव्यक्ति है। उसमे आपका एक अपना पन है, अपनी विशेषता है। आपके हृदय-स्थित कवि ने आपके जीवन मे जो कुछ देखा है, उसीं को सगीत का स्वरूप प्रदान किया है। उस सगीत मे एक व्यापकता है। वह कवियित्री के हृदय से निकल कर समाज और राष्ट्र ही तक सीमित नहीं रह जाता, दूर और सुदूर बासी मानव-हृदय को भी स्पश करने की उसमे क्षमता है। होमवती जी ने अपने जीवन की अनुभूति मे जगत के मानव जीवन को देखा है, या यों कहना चाहिये कि उनकी अनुभूति इतनी अकृत्रिम और इतनी स्वच्छ है, कि उस पर मानव जीवन का प्रतिबिम्ब पडता है।

होमवती जो की रचनाओ पर कुछ लिखने के पूर्व उनके जीवन पर कुछ प्रकाश डाल देना अत्यन्त आवश्यक है। इसका

कारण यह है, कि होमवती जी की कविता की अभिव्यक्ति उनके जीवन की अभिव्यक्ति है। उनकी रचनाओं पर उनके जीवन का प्रतिबिम्ब है, उनके जीवन की छाया है। एक प्रकार से उनका जीवन ही कवित्त्व मय है। उन्होंने नश्वर-जगत मे वेदना, आघात, और नियति की सहार-लीला के अतिरिक्त और कुछ देखा ही नहीं। वे कविता-जगत मे एक तपस्विनी की भाँति है। तपस्विनी की भाँति इसलिये है, कि वेदना और पीडा की अग्नि मे जला हुआ उनका जीवन जगत के कल्याण के लिये उसके सामने एक चिर सत्य रख रहा है। उनके निष्कलक और पवित्र गीत, मानव हृदय को उस प्रकाश का मार्ग दिखाते है, जो अन्धकार की ओट मे देदीप्यमान है।

होमवती जी की रचनाये पीडा के समुद्र मे लहरो की भाँति उछलती हुई दिखाई देती हैं। उनके हृदय मे एक टीस है, एक वेदना है। यह टीस और वेदना उनकी अपनी है, किन्तु जब वह उनके हृदय से निकलती है, तब समस्त जगत की वस्तु बन जाती है। उनकी वेदना मे पवित्रता है, निष्कलक भावों की छाया है। उनकी वेदना ऐसी है, जिसका जगत मे कोई उपचार नहीं। दिन के पश्चात् रात, और रात के पश्चात् दिन होता है। इसी प्रकार दुख, सुख, और उत्थान पतन का भी क्रम है। किन्तु कवियित्री की वेदना नियति के इस क्रम को तोड कर आगे निकल गई है। कवियित्री नियति के इस क्रम को जानती है, किन्तु साथ ही उसे यह भी ज्ञान है, कि—

सुख के सँग दुख, दुख के सँग सुख,
सुना यही क्रम जग का है।
किन्तु हमारी दुख-गाथा मे,
सुख का कुछ आधार नहीं।

कवियित्री की वेदना आशा के आधार से रहित है। उसकी आँखों के सामने कोई सम्बल नहीं, कोई प्रकाश नहीं। वह निराशा के सागर मे निमग्न है। समस्त जगत उसे अंधकार-मय दिखाई देता है। जगत के एक-एक शब्द, जगत की एक-एक गति, उसके हृदय मे काँटो के समान चुभती है। वह जगत मे अपने निराश और दुखी जीवन ही तक रहना चाहती है, और उस ओर बढना चाहती है, जहॉ सत्य है, जहाँ प्रकाश है। किन्तु जगत उसकी प्रगति मे बाधा उपस्थित करता है। कवियित्री ने जगत की उस बाधा और अपनी अवस्था का चित्रण। निम्नांकित पंक्तियों मे कितनी सुन्दरता के साथ किया है:—

इस थके से पथिक, को, मत छेड तू ओ जग दिवाने!
जा रहा वह राह अपनी, दर्द कुछ दिल का भुलाने!
\+ \+ \+
याद मत उसको दिला, भूले हुये उसके तराने।
मौन रहने दे नहीं, लग जायगा आँसू बहाने।
विश्व के वह भास सहकर, जा रहा है बे ठिकाने।
कर्म की कोरी कहानी, क्या पता किसको सुनाने!

किन्तु जगत क्यो मानने लगा? दुखियों को सताना, पीडितों को उनके अतीत की याद दिलाना तो जगत का काम है। जगत अपनी इस अमानवी लीला में सुख, सन्तोष, और उल्लास का अनुभव करता है। कवियित्री का सरल, निष्कलंक और विशाल हृदय जगत की इस अमानवी लीला से अत्यन्त पीडित हो उठा है। वह जगत से दूर, बहुत दूर चली जाना चाहती है। कहाँ जाना चाहती है, यह कवियित्री ही के सुन्दर और सरस शब्दों मे सुनियेः—

चल मन! ऐसे देश चलें।
जहाँ न अपना अपना कह कर, जग के लोग छलें॥
चल मन! ऐसे देश चलें।
जहाॅ न उर के दुखते छाले, जी चाहे कोई मल डाले।
जहाँ न पागल प्यार हृदय का, सिर धुन हाथ मले॥
चल मन! ऐसे देश चलें।
जहाॅ न चिन्ता नागिन डसती, जहाँ न पीडा पापिन बसती।
जहाँ न जग की निर्मम काया, पी पी रक्त पले॥
चल मन! ऐसे देश चलें।

कितनी सुन्दर और स्वाभाविक पक्तियाँ है। ऐसा ज्ञात होता है, मानों कवियित्री ने वास्तव मे अधिक पीडित होकर इन पक्तियो की रचना की है। इन पक्तियों में कवियित्री ने जिस लोक की ओर सकेत किया है, वह सुदूर और पहुँच के बाहर होने पर भी कवियित्री की सरलता और स्वाभाविकता

के कारण अधिक सन्निकट-सा आ गया है। किन्तु फिर भी कवियित्री अपनी अनुभव की शक्ति से यह कह रही है, कि उस अपूर्व लोक मे प्रत्येक व्यक्ति नही पहुँच सकता। उस लोक मे, जीवन के उस पार, जहाँ सुख ही सुख है, जाने के लिये मन मे सुरति की सुस्थिरता होनी चाहिये, और होनी चाहिये वास्तविक पीडा। क्यो ? यह कवियित्री ही के शब्दो मे सुनिये :—

सखे ! ऐसा चचल मन लिये भला, कैसे जाओगे पार ?
घोर-तम, अगम सिन्धु की धार, जीर्ण नौका, टूटी पतवार।

सुरति यदि सुस्थिर होगी नहीं,
कहीं टकरा जायेगी नाव !
उठाना दूभर होगा मित्र !
विखर-जायेगे संचित-भाव ।

पाठक आप देखे, होमवती देवी की रचनाओ मे भावो की कितनी व्यापकता है ! व्यापक भावों का सरलता के साथ चित्रण करना कवियित्री की एक अपनी वस्तु है। कवियित्री की अनुभूति बहुत ही सुन्दर, बहुत ही पवित्र और बहुत ही स्वाभाविक है। उसकी वेदना जगत की वेदना होने पर भी दार्शनिक वेदना है। वह अपनी वेदना के महायान पर चढ कर तीव्रतर गति से 'सत्य शिवम् सुन्दरम्' की ओर अग्रसर होती हुई दिखाई दे रही है। उसकी एक-एक पंक्ति मे

अमिट जीवन का सुन्दर सन्देश है। ऐसा सन्देश है, जो प्राणो को बजा देता है, मन को विस्मृत कर देता है।

होमवती जी का जन्म मेरठ के विख्यात वश पत्थर वालो के यहाँ १९०६ ई० मे हुआ था। जब आप छोटी-सी थी, तभी आपके माता-पिता का देहावसान हो गया। आपके शैशव जीवन को जो आघात लगा, वह भीतर ही भीतर मस-मसा कर रह गया। किन्तु आपके हृदय मे जो प्रकृत कवि था, उसने इन घटनाओ से ससार की अनित्यता को देखा। वयस्क होने पर आपका विवाह हुआ। आपके पीडित जीवन ने पति के रूप मे सुख के आलोक को देखा। किन्तु नियति ने उस आलोक को भी छिपा लिया। होमवती जी का कवि इस असह्य पीडा से चिल्ला उठा। इसी पीडा का सार तो उनकी कविताओ मे है, जिसमे उन्होंने अपने हृदय को ढाला है।

होमवती जी सुशिक्षित, विचार शील, और उदार-हृदय महिला हैं। आपके विचार बडे ऊचे और आदर्श है। इस समय आपके परिवार मे आप और आपका एक मात्र पुत्र है। आप सफल लेखिका और ऊँचे दर्जे की कवियित्री होने के साथ ही साथ सुन्दर कहानी-लेखिका भी है। कविताओं ही की भाँति आपकी कहानियाँ भी हृदय-स्पर्शी और उच्च कोटि की होती हैं। आपकी 'उद्गार', 'निसर्ग' और 'अर्घ' नाम की तीन पुस्तके भी प्रकाशित हुई हैं।

निम्नांकित रचनाओं मे होमवती जी की काव्य-कल्पना देखिये:—

[१]

उलझन

पल पल क्यों हृदय मचलता है,
ऐसी भी क्या विह्वलता है ?
किससे मिलने की आशा मे, किस मौन व्यथा की भाषा मे ?
घुल-घुल कर आँखो से छल-छल, आँसू बन-बन कर ढलता है ?
पल-पल क्यो हृदय मचलता है ?
किसकी चिन्ता मे, चिन्तन मे, सूनापन लेकर जीवन मे ।
मन थक-थक कर गिर जाता क्यों, फिर धक्-धक् करता चलता है ।
पल-पल क्यो हृदय मचलता है ?
प्राणो मे भी, ज्वाला-सी है, शायद कोई छाला भी है ।
दुखते रसते छू घावो को, चुपके से कोई मलता है ॥
पल-पल क्यो हृदय मचलता है ?
जी घुटता है, घबराता है, जाता है, फिर आ जाता है ।
क्या नेह भरा उर-दीप सदा, धीरे-धीरे ही जलता है ?
पल-पल क्यों हृदय मचलता है ?

[२]

चिर-शान्ति

नाविक ! आओ नौका खेले !
छहराओ मत, विगत कहानी, होगी भी क्या ऐसी हानी ।

आओ सुस्थिर होकर बैठे, कुछ हँस लें, कुछ बोले ॥
नाविक ! आओ नौका खेले ।
रहने दो पतवार पुरानी, सह न सकेगी यह मन मानी ।
आओ ! युग-युग की पीडा को, हम तुम मिल कर ढोलें ॥
नाविक ! आओ नौका खेलें ।
भव-सागर की दुस्तर लहरे, नित घन-घोर घटाये घहरे ।
बहने दो, डगमग नैया को, चलो भवँर मे हो लें ।
नाविक ! आओ नौका खेले ।
इस तट पर कोलाहल भारी, कौन सुनेगा, व्यर्थ, हमारी ।
उर-क्षत यहाँ न भर पायेंगे, चल उस तट पर धोले ॥
नाविक . . ...।
अब तक कभी न सुख से सोये,
निशि दिन पल-पल क्षण क्षण रोये ।
जीवन की अन्तिम घडियों मे, आ ! सब खोकर सोले ॥
नाविक . . ।

[३]

निर्माण

मैंने नव ससार बसाया ।
क्या कोइ समझेगा इसको, क्या कह कर समझाऊँ किसको ।
आज जगत मे इतना बल है, छू लेगा वह स्वप्निल छाया ॥
मैंने नव ससार बसाया ।
मैंने उर के सूने पन मे, नेह भरा नीरस जीवन मे ।

लग्न अग्नि मे तिल-तिल जल कर, है प्रेम-प्रदीप जलाया ॥
मैंने नव ससार बसाया ।
लेकर चाह आह चुन चुन कर,
निशि वासर क्षण क्षण घुल घुल कर,
अरे ! व्यथा को प्राणो मे भर देख सकी हू सुख की छाया ॥
मैंने नव ससार बनाया ।

[४]

उपेक्षा

क्या हमारा स्वप्न-सुख भी,
खार बन कर ही रहेगा ?
विश्व के अनुताप से जल,
क्षार बन कर ही रहेगा ।
है कठिन-विस्तीर्ण-पथ, अस्तित्व ही क्या है हमारा ?
पर जगत के कुलिश उर पर, भार बन कर भी रहेगा !
विश्व जब अपना नहीं, तो,
क्या हमे उसको पडी है ?
प्यार प्राणों का सखे !'
आधार बन कर ही रहेगा ।
दूर चल कर क्षितिज रेखा पर, नई दुनिया बसा ले ।
प्राण अपना परिधि मे, ससार बन कर ही रहेगा ॥
शोक क्रन्दन के सिवा,
ससार से क्या मिल सकेगा ?

विश्व का उपकार भी,
अपकार बन कर ही रहेगा ?

[५]

आज मेरी

आज मेरी बेबसी पर, विश्व सब इठला रहा है।
आंसुओं पर हँस रहा, आहों से जी बहला रहा है ॥
क्या कहूं, अपनी व्यथा, कह कर भला किसको सुनाऊँ।
मर्म-क्षत गहरे हुये जाते, इन्हे क्यो कर छिपाऊँ ॥
दर्द भी अपना दवा बनता किसी की जा रहा है।
आज मेरी ।

सिसकती है रात मेरी, अश्रु चुनता प्रान मेरा।
नित्य के संघर्ष मे पड, कर रहा अवसाद फेरा।
स्नेह-पूरित दीप भी, अब टिम टिमाता जा रहा है।
आज मेरी ।

आश थी जिनसे अधिक, वह आँख सब दिखला रहे है।
झन झना कर शृंखलाओ को, हृदय दहला रहे है ॥
प्यार प्राणों का विवश अब, भार होता जा रहा है।
आज मेरी ।

श्रीमती सूर्य देवी दीक्षित 'ऊषा'

श्रीमती सूर्य देवी दीक्षित ने अपनी सुन्दर और भावपूर्ण रचनाओं से हिन्दी-साहित्य मे अधिक सुख्याति प्राप्त कर ली है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा दिये जाने वाले सेकसरिया पुरस्कार को प्राप्त करके आपने अपनी ख्याति को साहित्य-जगत मे और भी अधिक व्यापक बना दिया है। आप की रचनाओ के क्रम-विकास पर दृष्टि डालने से यह पता चलता है, कि आप तीव्रतर गति से काव्य-जगत के उस विकास की ओर अग्रसर हो रही है, जो कवि को साहित्य-ससार मे अधिक स्थिरता प्रदान करता है।

सेकसरिया पुरस्कार प्राप्त करने के पूर्व हिन्दी की कुछ मासिक पत्रिकाओं मे आपकी रचनाये प्रकाशित होती थीं। उस समय हिन्दी-जगत को आपकी कवि-प्रतिभा का पूर्ण परिचय न प्राप्त हो सका था। हिन्दी-ससार को आपकी सुन्दर कवि प्रतिभा का परिचय तो आपकी 'निर्झरिणी से प्राप्त हुआ है, जिस पर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने सेकसरिया पुरस्कार प्रदान किया है। निर्झरिणी का कल-कल निनाद जब से साहित्य-जगत मे

सुनाई देने लगा है, लोग मुक्त कठ से आपकी कवि-प्रतिभा की प्रशसा करने लगे हैं। आपकी निर्झरिणी मे क्या नहीं है ? ओज, माधुर्य, काव्य के अलंकृत गुण, भावों की व्यापकता, सुन्दर अनुभूति हृदय स्पर्शिता, सरल, स्वाभाविक चित्रण,सभी कुछ तो विद्यमान है। 'निर्झरिणी' हिन्दी-साहित्य की एक अमरकृति है, और उसकी कवियित्री काव्य-जगत की एक अमर कलाकार। जिस कवियित्री ने 'निर्झरिणी' के कल-कल निनाद में अपने हृदय के भावो को प्रतिध्वनित किया है, उसमे जगत के किसी भी साहित्य की मर्यादा को विस्तृत करने की सफल शक्ति है।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान और प्रवर कव्य-समालोचक प० रामचन्द्र जी शुक्ल 'ऊषा' जी की रचनाओ पर सम्मति प्रगट करते हुये लिखते हैं'–इसमे मुझे वह कवि-हृदय मिला, जिसमे जगत और जीवन के मार्मिक स्वरूप को ग्रहण करने और झलकाने की पूर्ण क्षमता है। आपकी रचनाये क्या हैं, जीवन-रस के छोटे-बडे सोते हैं। ये न तो कल्पना की कोरी उडान के रूप मे हैं, न अभिव्यजना की अनपेक्षित वक्रता के रूप मे। इनमे है जीवन के मार्मिक प्रसार पर स्वच्छ दृष्टि, उसके प्रति सच्ची, सरल, अनुभूति, और उस अनुभूति को जगाने वाली भोली अभिव्यजना। जहाँ परमार्थिक कामना व्यक्त की गई है–जैसे मुक्ति की भिक्षा मे–वहाँ अप्रस्तुत-विधान के सकेत साफ-सुथरे और हृदय ग्राही हैं।

'ऊषा' देवी जी की रचनाओ के सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल जी ने जो सम्मति प्रगट की है, वास्तव में वह अधिक मूल्यवान है। निसन्देह अधिक जोर के साथ यह कहा जा सकता है, कि 'ऊषा' देवी की रचनाये सचमुच जीवन-रस के छोटे-बडे सोते है। जीवन मे जो अनेक आघात-प्रतिघात होते है, 'ऊषा' जी के कवि-हृदय ने उन्हीं को ग्रहण किया है, और अपनी कवि-प्रतिभा से उन्हीं को संगीत का स्वरूप प्रदान किया है। यद्यपि 'ऊषा' जी की निर्झरिणी मे जीवन के अनेक भाव कुसुम के रूप मे बहते हुए दिखाई दे रहे हैं, किन्तु उनमे असीम प्रेम के भाव-सुमन अधिक हैं। उनकी प्रत्येक रचना मे हृदय-स्पर्शी प्रेम है। इसी लिए उनकी रचनाओ मे अधिक सरसता और अधिक हृदय-स्पर्शिता भी है।

प्रेम की आपकी अनुभूति बडी सुन्दर और सजीव है। आपकी मनोहर और काव्य-गुणो से अलकृत कल्पनाओ ने प्रेम को चित्रण करते हुये प्रेम को सजीवता को स्वरूप प्रदान कर दिया है। निम्नांकित पक्तियो मे देखिये, कवियित्री की प्रेमानुभूति और उसकी काव्य-कल्पना का कितना सुन्दर विकास हुआ है:—

किस गर्व मयी बाला के
सेंदुर का सुन्दर टीका।
फैला उद्गार सिमट कर,
किस भावमयी के जी का।

\+ \+ \+

नीरव रजनी मे जागी,
पथ-तकते जीवन-धन का,
इससे नयनो मे लाली,
कुछ भेद बताओ मन का।

ऊपरोक्त पंक्तियो मे कवियित्री ने ऊषा के ऊपर जो प्रेम-पूर्ण कल्पना की है, उससे कवियित्री की कवि-प्रतिभा और उसकी स्वभाविक-अनुभूति का सुन्दर परिचय मिलता है। कवियित्री मे विभिन्न कल्पनाओं को जगाने की अच्छी शक्ति है। वह जिसका चित्रण करना चाहती है, उसे विभिन्न कल्पनाओं से सजा कर सजीव और प्राणमय बनाना भी जानती है।

'ऊषा' देवी के प्रेम मे विभिन्न कल्पनाओं के शृङ्गार के साथ ही साथ भावो की व्यापकता और विशदता भी है। वे अपनी सजीव प्रेमानुभूति और उसकी वास्तविक प्रेरणा के साथ मानव जगत में विचरण करती हुई दिखाई देती हैं। वे जगत को ही प्रेम मय देखती हैं। उनकी सृष्टि का आधार प्रेम है। वे प्रेम से ही जगत पर विजय प्राप्त करना चाहती है, और जगत मे प्रेम ही को 'चिर सत्य' के रूप मे देखती हैं। निम्नांकित पंक्तियो मे इसकी परीक्षा कीजिये:—

कहते हैं ध्यानी, ज्ञानी, जग-
है माया-दुख मूल सखी!

किन्तु इसी जग मे खिलते हैं,
सुखद प्रेम के फूल सखी !

\+ + +

इसी प्रेम पर विश्व थमा है,
प्रेम शृष्टि का सार सखी !
बिना प्रेम का जीवन जग मे,
बन जाता है भार सखी !

'ऊषा' देवी मे दार्शनिकता भी है। अध्यातिमक भावों का विकास उनकी 'मैं' शीर्षक कविता मे पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है। इस कविता से यह प्रगट होता है, कि कवियित्री का ध्यान सत्य शिवम् सुन्दर को ओर भी है और वह अपने हृदय में उसका अनुभव भी करती है। निम्नांकित पक्तियों को देखिये, वे अध्यात्मवाद के किस गभीर सागर की ओर मन को आकृष्ट कर रही हैं :—

जो कभी न होता खाली,
वह कविता का प्याला हूं।

\+ + +

मै एक ज्योति ऐसी हूँ,
जो बुझ कर हूं जल जाती।

कवियित्री के नारी हृदय की अनुभूति कहीं कहीं इतनी सुन्दर और इतनी उच्च कोटि की है, कि मन मुग्ध हो जाता है। कवियित्री अपनी इस स्वानुभूति को प्रगट करके साहित्य

मे अमर बन गई है। एक भारतीय नारी अपने भाल पर लगे हुये सिन्दूर-विन्दु को क्या समझती है, यह कवियित्री के नारी-हृदय-कवि ही के स्वर मे सुनियेः-

अनुराग-राग प्रियतम का,
मेरे सुहाग की लाली।
सिन्दूर-विन्दु बन झलकी,
मेरे मस्तक पर आली।
\+ + +
सम्मुख इसके झूठा है,
जग का सब रत्न खजाना।
अनमोल मोल इसका है,
बस नारि हृदय ने जाना।

कितनी सुन्दर, स्वाभाविक, और सरल पक्तियाँ है। कवियित्री की उक्त पक्तियों मे, कवियित्री के हृदय का स्वर नहीं, समस्त भारत को स्त्रियो का स्वर है। कवियित्री यहाँ स्त्री-जगत का प्रतिनिधित्त्व करती हुई दिखाई देती है। उसकी अनुभूति कितनी सच्ची, कितनी अकृत्रिम, और कितनी सर्व व्यापिनी है। कवियित्री इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य के गर्व की वस्तु है।

'ऊषा' जी हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि स्वर्गीय मन्नन द्विवेदी गजपुरी की छोटी बहन हैं। आपके पति देव प० उमाशकर दीक्षित एम० ए० यल० टी० कानपुर के सुप्रतिष्ठित नागरिक और हिन्दी-साहित्य के अच्छे विद्वान हैं। आप शिक्षा के विशेषज्ञ हैं।

आपके सहयोग से ऊषा जी की कवित्व-शक्ति का दिनो दिन अधिक विकास हो रहा है। ऊषा जी ने अपना परिचय स्वय निम्नाकित शब्दों मे दिया है:—

ऊषा नाम मेरा है, विदित कवि-मण्डलो मे,
रापती नदी के तट खेल के पली हूँ मै।
पाया जन्म मैंने कान्य कुब्ज कुल मे है,
मातादीन कवि-हरिदास की लली हूँ मै।
राष्ट्र भाषा-कविता कला के मार्त्तण्ड रूप,
मन्नन द्विवेदी जी की भगिनी भली हूँ मैं।
काव्य-कुसुमों के मधुपान करने को नित,
रहती बनी ही मधु-लोलुप अली हू मै।

आपकी कविताओ का एक सग्रह अभी 'निर्झरिणी' के रूप मे प्रकाशित हुआ है। निम्नांकित कविताओ मे आपकी सुन्दर कवि-प्रतिभा देखिये:—

[१]

ऊषा

आरक्त छटा छिटकायी,
किसने प्राची मे आकर ?
रँग दिया क्षितिज का अचल,
किसने रोली विखरा कर !
इस स्वर्ण किरण में फैली,
किस सुख-सुहाग की लाली ?

माणिक-मदिरा से भर दी,
किसने भावों की प्याली ?

किस गर्व मयी बाला के,
सेंदुर का सुन्दर टीका ?
फैला उद्गार सिमट कर,
किस भाव मयी के जी का !

या करता प्राण चितेरा,
अंकित प्राची के पट पर—
तारों की करुण कहानी,
सुन्दर रक्तिम रँग भर कर।

है विश्व-वाटिका के किस,
कमनीय कुसुम की लाली !
नित घोल अरुणिमा जिसको,
सींचा करता बनमाली।

रजनी के उर-अन्तर में,
जो विरह-व्यथा हिमकर की;
वह अरुण रूप धर आई,
ज्वाला-सी बन अम्बर की।

फट गया हृदय रजनी का,
बह चली रुधिर की धारा।
क्या प्रिय वियोग ने उसको,
है तीव्र दुधारा मारा !

आ सके स्वर्ग से भू पर,
जिसमे ऊषा सुकुमारी।
विधि ने निर्मित कर दी क्या,
यह स्वर्ण सडक अति प्यारी।

या आज गगन-गङ्गा है,
भू पर आकर लहराई,
नन्दन वन के कुसुमों की,
लालिमा बहाकर लाई।

क्या इसी स्वर्ण धारा से,
धुल गई क्षितिज की रेखा,
क्रीडा करती ऊषा को,
जिसमे आ रवि ने देखा।

अध खुले अरुण नयनो मे,
कुछ-कुछ मद की आभा ले,
अपना ऐश्वर्य लुटाकर,
क्या देख रही हो बाले!

नीरव रजनी मे जागी,
पथ तकते जीवन-धन का,
इससे नयनो मे लाली,
कुछ भेद बताओ मन का।

इस प्रथम किरण मे प्यारी,
क्या जादू भर लाई थी?

यह उछल पडा जग सारा,
क्या टोना कर आई थी ?
इस अरुण छटा पर बोलो,
कितनी हिम-निधयाँ वारूँ ?
किस भाव भरे नयनो से,
अपलक मै इसे निहारूँ ।
हो मुदित विहगम कुल ने,
स्वागत का गान सुनाया ।
नव नर्तन प्रकृति नटी ने,
है कण-कण का दिखलाया ।
भोली कलियाँ मुसुकाई,
हिम कण का हार-पहनकर,
हो मुग्ध कुसुम सब विहँसे,
प्रिय अलि के मधुर मिलन पर ।
मजुल मलयानिल ने भी,
तब छेडा मस्त तराना ।
तेरा आना सुकुमारी,
इस अखिल विश्व ने जाना ।

[२]

प्रेम

अली कली मे बँध जाता है,
देता जीवन वार सखी ।

नहीं काठ से कठिन कमल दल,
पर है उसका प्यार सखी ।
कहते है ध्यानी, ज्ञानी जग–
है माया, दुख-मूल सखी ।
किन्तु इसी जग मे खिलते है,
सुखद प्रेम के फूल सखी ।
अग, जग, जड, चेतन सब ही मे,
व्याप्त हो रहा प्रेम सखी !
किसके नयन नहीं भर आते,
लख चातक का नेम सखी !
इसी प्रेम पर विश्व थमा है,
प्रेम-सृष्टि का सार सखी !
बिना प्रेम का जीवन जग मे,
बन जाता है भार सखी !
प्रेम-पन्थ पर मर मिटने मे,
भी है कितना स्वाद सखी !
जिस सनेह मे दाह, आह वह,
पापों का उन्माद सखी ।
कहते है यह जग बन्धन है,
अरु है कारागार सखी ।
किन्तु इसी को स्वर्ग बनाता,
है प्रियतम का प्यार सखी !

[२]

अनुराग-राग मे गूँथी,
मै स्नेह-सुमन-माला हूं ?
जो कभी न होता खाली,
वह कविता का प्याला हू ।

अविराम हेरती प्रिय का,-
पथ वह चकोर बाला हूँ,
पडता प्रेमी के उर में,
मै वह कोमल छाला हूँ ।

अविरल गति बहने वाली,
मै नेह नदी गहरी हूँ,
पावन प्रिय, पद रज, धोने,
प्रियतम पथ पर ठहरी हूँ ।

मै एक ज्योति ऐसी हू,
जो बुझकर हूँ जल जाती,
जीवन-मनेह जलता है,
लेकर प्राणो की बाती ।

मै एक रागिनी वह हूँ,
जिस को प्रेमी गाते है,
सुन जिसे मोह-निद्रा मे,
सोते जन जग जाते हैं ।

मैं एक सरस उपवन हूँ,
जिसमे वसन्त लहराता,
नित स्नेह-समीरण आ, आ,
सुख-सौरभ बरसा जाता।

मैं एक ललित लतिका हूँ,
इस जग रूपी उपवन की,
जो मगन लगन मे अपनी,
हूं एक बूँद उस घन की।

जो नयन-नीर से भीगा,
वह विरहिन का अचल हूँ,
जिसमे न पाप की छाया,
शिशु का वह हग चचल हूँ।

हू मधुर कूक कोयल की,
चकवी की मीठी पीडा,
हूँ शील सती नारी का,
हू कुल-बाला की व्रीडा।

सुख का अथाह सागर हूँ,
हूँ एक लहर करुणा की,
दुख की सूखी सरिता हूँ,
हू विकल प्रेम की झाँकी।

[४]

सिन्दूर-विन्दु

अनुराग-राग प्रियतम का,
मेरे सुहाग की लाली ।
सिन्दूर-विन्दु बन झलकी,
मेरे मस्तक पर आली !

वह उर-प्रदेश प्रियतम का,
मैंने जब विजय किया था ।
अपने कर से प्रियतम ने,
मेरा अभिषेक किया था ।

दो हृदयों को मथ कर जो,
भावों का सार निकाला ।
यह रुधिर उसी का टीका,
मम मस्तक पर द डाला ।

प्रिय प्रेम रूप स्वाती जल,
मम उर सम्पुट मे जाकर ।
है हुआ प्रकट यह मोती,
मन मोहक रूप बना कर ।

मम हिय-सागर मन्थन कर,
प्रिय ने यह रत्न निकाला ।
उपहार प्रेम का कह कर,
फिर मुझको ही दे डाला ।

उर–कुजलता की मेरी,
यह अरुण सुमन छवि वाला।
मकरन्द पान कर जिसका,
मम मन-मलिन्द मतवाला।

यह लगी भाल पर मेरे,
विधि कर की अरुण निशानी।
यह लिखी मूक भाषा मे-
मेरी सौभाग्य कहानी।

यह निधि मेरे जीवन की,
शृङ्गार-सार यह मेरा।
यह प्राण बना प्राणों का
जीवनाधार यह मेरा।

सीमित है इसी परिधि मे,
जीवन की सारी आशा में।
इसके नन्हे से उर मे,
सोती कितनी अभिलाषा।

सम्मुख इसके झूठा है,
जग का सब रत्न खजाना।
अनमोल मोल इसका है,
बस, नारि हृदय ने जाना॥

श्रीमती शकुन्तला देवी खरे

हिन्दी-साहित्य-जगत मे इस समय जो कवियित्रियाँ अपने उज्वल भविष्य को लेकर आगे बढ रही हैं, उनमे एक शकुन्तला देवी खरे हैं। आप एक भावुक और सुप्रसिद्ध कवि की पत्नी है। आपकी कविताओ मे विकास के गुण अधिक परिमाण मे विद्यमान तो हैं ही, आपको अनुकूल जीवन भी प्राप्त है। कहना न होगा, कि आपकी रचनाओ का तीव्रतर विकास हो रहा है। अभी आपने थोडे ही दिनो से काव्य-जगत मे प्रवेश किया है, तथापि आपकी रचनाओ मे अधिक प्रौढता अधिक स्पष्टता और अधिक हृदय-स्पर्शिता है। आपकी भाषा बहुत ही परिमार्जित, सुन्दर, और भावो को ठीक-ठीक व्यक्त करने वाली है। आपकी सुन्दर और भाव-पूर्ण रचनाओं को देख कर हमें यह कहते हुये अपार हर्ष हो रहा है, कि कुछ ही दिनों मे हम आपको हिन्दी की कवियित्रियो मे एक विशेष स्थान प्राप्त करते हुये देखे गे।

'खरे' जी के कवि मे सर्वतोमुखी प्रतिभा है। वह सुकुमार

है, सरस है। उसका हृदय विशाल और महत्त्वाकाक्षी है। उसकी दृष्टि बहुत पैनी और सूक्ष्म है। वह जगत मे जीवन के तत्त्व को खोजता है। ससार उसे एक रहस्यमय दिखाई देता है और वह चकित होकर कह उठता है —

प्रति पल सुख-दुख का अभिनय,
क्यों जग जीवन मे होता ?
सुन्दर सुन्दर आँखों मे,
क्यो आँसू-सागर-सोता ?
फूलो ने क्यों सीखा है,
खिल-खिल कर मुरझाजाना ?
सीखा है क्यो मेघो ने,
अपना सर्वस्व मिटाना ?

दार्शनिक कवि के लिये यह सहज स्वाभाविक बात है, कि वह ससार के रहस्यों को देख कर उस पर आश्चर्य प्रगट करे। दार्शनिक कवि जगत और जीवन के रहस्यो को पहले भेदने का प्रयत्न करता है, किन्तु जब नहीं भेद पाता, तब अपने हृदय के उद्गारो को आश्चर्य के रूप मे प्रगट कर देता है। ससार के सभी बडे-बडे दार्शनिक कवियो मे आश्चर्य की यह भावना पाई जाती है। वास्तविक कवि होने के कारण खरे जी ने भी अपनी उस भावना को व्यक्त किया है, जिसमे अपने आप दार्शनिकता प्रस्फुटित हो उठी है। 'खरे जी' जगत और जीवन के तत्त्वों पर आश्चर्य ही प्रगट करके नहीं रह जातीं।

उनका दार्शनिक कवि-हृदय उन्हे और आगे जाने के लिये विवश करता है। वे जब दार्शनिक जगत मे और आगे बढ़ती हैं, तब उन्हे जीवन और जगत के बीच मे एक सुन्दर 'सत्य' दिखाई देता है। कवियित्री अपने हृदय की दार्शनिक आँखों से उसकी पूर्णता को देख लेती है, और फिर अपनी अपूर्णता को उसमें मिला देने के लिये ललक उठती है। कवियित्री ही के स्वर मे उसकी ललक को सुनिये —

मै तुममे लय हो जाऊँ!
तुममे मिलकर मैं प्रियतम अपना सौन्दर्य बढाऊँ!
सुख मुझसे आज मिला है,
यौवन का फूल खिला है,
चरणो मे उसे चढा कर मगल मै सदा मनाऊँ,
अपना अस्तित्त्व मिटाकर केवल मै तुमको पाऊँ!

कितनी उच्च कोटि की कल्पना है। कवियित्री की कल्पना को देख कर हम यह कह सकते हैं, कि वह कविता के प्रारभिक काल को छोड कर बहुत आगे निकल गई है। कवियित्री की उक्त पक्तियो मे दार्शनिकता बडे ही सूक्ष्म रूप मे प्रस्फुटित हुई है। कवि के प्रारभिक काल मे दार्शनिक भावो की ऐसी गहरी सूक्ष्मता बहुत कम पाई जाती है। किन्तु यही तक समाप्त नहीं, कवियित्री के दार्शनिक भावो का आगे और भी अधिक विकास हुआ है। देखिये:—

है चाह नहीं जीवन की, वैभव पाकर इठलाऊँ।
अपनी मधु मुसुकानों से जग को न लुभाने जाऊँ।

+ +

है चाह यही जीवन की, तिल-तिल कर हृदय जलाऊँ,
प्रियतम के पावन पथ की पथ-रज बन मैं खोजाऊँ।

किन्तु क्यों ? दार्शनिक कवियित्री अपने उस 'पूर्ण' प्रियतम पर, जो 'सत्य है' 'सुन्दर' है, क्यों इतनी रीझी हुई है ? वह क्यों उसकी प्राप्ति के लिये 'खोजाने' के लिये तैयार है ? सुनिये:—

तुमम चिर आनन्द छिपा है,
तुममे झूम रहा उल्लास।
मेरे मन-मन्दिर मे सुख से,
बसे रहो मेरे भगवान।

कवियित्री को अपनी लघुता, और अपने प्रियतम की महानता का भी ज्ञान है। वह भली भाँति जानती है, कि जीवन प्रकृति और सृष्टि के बीच मे वही एक महान है, वही एक सत्य है, वही एक पूर्ण है। कवियित्री न अपनी इस विशद भावना को जिस प्रकार व्यक्त किया है, वह दर्शनीय है.—

तुम पूर्ण चन्द्र, मैं एक किरण,
तुम महा सिन्धु मै चपल लहर,
तुम विश्व वेणु, मै मादक स्वर,
तुम चिर सुन्दर, मै छवि नश्वर।

'खरे' जी की इन पक्तियों मे एक दार्शनिक गूढ़ तत्त्व छिपा हुआ है। 'गूढ तत्त्व' छिपा होने पर भी पक्तियॉ बहुत ही सरल और स्पष्ट हैं। खरे जी की दार्शनिक कल्पनाओं की यह एक प्रधान विशेषता है, कि वे बहुत सुलझी हुइ और स्पष्ट हैं।

'खरे जी' की 'नारी गान' शीर्षक कविता मे उनके नारी हृदय की सुन्दर अभिव्यक्ति हुइ है। 'नारी जीवन' का ऐसा सजीव और वास्तविक चित्रण आज तक मुझे कहीं देखने को को नहीं मिला। देखियेः--

हम विश्व प्रिया, हम रूप राशि
कितने ही हृदयों की रानी,

\+ + +

हम नवल वधू हम जग-माता,
हम मुग्ध सुन्दरी सुकुमारी।

\+ + +

हम अटल भक्ति, हम मधुर मिलन,
पावनता का आगार हमीं।
हम महा शक्ति, हम महा क्रान्ति,
रण चण्डी की तलवार हमी।

कितनी सुन्दर और कितनी उच्च कोटि की पंक्तियां है। इनमे 'नारी जीवन' का मूल रहस्य है। और खरे जी उस रहस्य तक पहुंची हुई जान पडती हैं। 'खरे' जी की ये सजीव और स्वाभाविक पक्तियाँ साहित्य-जगत मे उन्हे अमरता प्रदान करेगी।

खरे जी मे राष्ट्रीय भावना के साथ ही साथ विश्व भावना भी है। जिस प्रकार उनकी राष्ट्रीय-भावना मे जीवन की ज्योति है। उसी प्रकार विश्व-भावना मे उनका उच्चादर्श है। उनका आदर्श बहुत ही व्यापक, और सम्माननीय है। निम्नांकित पक्तियो मे देखिये, उनकी मधुर कल्पना उनके उच्चादर्श को किस प्रकार प्रगट कर रही है:—

मेरे जीवन का मधुर हास।
तुम फूल फूल पर खिले रहो,
शशि के शरीर मे लुक जाओ।
विद्युत के मुख पर चमक-चमक,
रह-रह कर मुझको हर्षाओ।

'खरे जी' की समस्त रचनाओं मे उनका उच्चादर्श है। उच्चादर्श इस लिये है, कि उनमे एक सत्य है, मानव जीवन को सुन्दर बनाने वाली एक सुन्दरता है।

श्रीमती शकुन्तला देवी खरे हिन्दी के सुप्रसिद्ध नवयुवक कवि श्रीयुत बाबू नर्मदाप्रसाद खरे की धर्म पत्नी हैं, और अपने पति के साथ जबलपुर मे रहती है। आप सुशिक्षित होने के साथ ही साथ उदार और भावुक हृदया भी हैं। नीचे हम आप की कुछ कवितायें, उद्धृत कर रहे हैं.—

[१]
नारी गान

हम विश्व-प्रिया, हम रूप-राशि,
कितने ही हृदयों की रानी।

हम स्नेह तरल, हम सरल हृदय,
कवि की हम ही कोमल वाणी।
हम नवल वधू, हम जग माता,
हम मुग्ध, सुन्दरी सुकुमारी।
हम विरह-ज्वाल मे सुधा-धार,
हम जग के प्राणों को प्यारी।
ऋद्धि-सिद्धि हम करुणा क्षमता,
कोमलता का शृंगार हमीं।
हम अटल भक्ति हम मधुर मिलन,
पावनता का आगार हमीं।
हम महा शक्ति, हम महा क्रान्ति।
रण चण्डी की तलवार हमीं।
निज देश-मान पर मिटती हैं,
बन दुर्गा का अवतार हमीं।

[२]

गीत

मै तुम मे लय हो जाऊँ।
तुम मे मिल कर मै प्रियतम, अपना सौन्दर्य बढ़ाऊँ।
सुख मुझसे आज मिला है,
यौवन का फूल खिला है,
चरणों मे उसे चढ़ा कर मगल मै सदा मनाऊँ।

अन्तर का घाव हरा है,
नयनों मे नीर भरा है,
नित दर्शन करूँ तुम्हारे जीवन की जलन मिटाऊँ।
चिर शान्ति मधुर सुख पाने,
प्राणों को अमर बनाने—
अपना अस्तित्व मिटाकर, केवल मै तुमको पाऊँ।

[३]

गीत

जब से तुम जीवन मे आये!
कितने स्वर्ग और नन्दन बन तुम मे हँसते पाये!
अब सोने के दिन होते है, और चाँदी की राते,
पल से प्रहर बीत जाते है, करते मधुमय बाते,
तुम तो एक नया जग लेकर इन प्राणों मे छाये।
पवन-सुरभि लेकर आती है, कलियाँ ले मुसुकाने,
कोयल की वाणी वशी भी, गाती सुख मय गाने
सुखद बसन्त चला आता है, प्रियतम! बिना बुलाये।
वह अनन्त छवि पीकर ही तो, भूले जग दृग-तारे,
मैं अपना पन भूल चुकी हू, तुमको पाकर प्यारे!
मरुथल-से प्यासे जीवन मे तुम ही सावन लाये।
जब से तुम जीवन में आये!

[४]

संहार-विजय

आज मृत्यु का खेल अनोखा,
वीरों ने हँस खेला।
दिन कर भी तो रक्त वर्ण है,
आई संध्या बेला॥
देश-प्रेम के मतवाले हैं,
चिर निद्रा मे सोये।
हँसने वाला हँसले उन पर,
रोने वाला रोये।
जननी, आँसू-मोती का,
तू क्यों कर हार पिरोये?
अरी, खून का दाग बावली,
क्या आँसू-जल धोवे?

—————

श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी

श्रीमती हीरा देवी की रचनाओं से हिन्दी-जगत अधिक सुपरिचित है। आपकी सुन्दर रचनाये हिन्दी की सभी मासिक पत्र-पत्रिकाओ मे बराबर प्रकाशित होती रहती हैं। आपकी कुछ रचनाये बड़ी सुन्दर है, और उनमे कवित्त्व का अच्छा विकास हुआ है। आप मे भावुकता है, और अनुभूति भी है। आप अपने अनुभूत भावो को शब्दो के द्वारा व्यक्त कर देना भली भाँति जानती है। प्रमाण के लिये निम्नांकित पंक्तियां देखिये:—

मूक हृदय से निकले है सखि,
छन्द मनोहर ये दो चार।
मेरी दुखद निराशा का है,
निहित इन्हीं मे पारावार।

आप मे उच्चादर्श की झलक भी है। आपके उच्चादर्श में राष्ट्र की कल्याण भावना है। राष्ट्र-जननी की पीड़ित पुकारने आप की आत्मा कों दुख से अधिक विह्वल बना दिया है।

आपकी वह दुख-विह्वलता निम्नांकित पंक्तियों में भली प्रकार विकसित हो सकी है:—

सुरभित पुष्पों के पखों पर,
षट पद बन कर मतवाली,
नहीं चाहती रहूं डोलती,
डाली डाली पर आली!
नव बसन्त में किसलय बनकर,
मारुत-झूला मनमाना—
झूल-झूल कर नहीं चाहती,
वैभव पर ही इतराना!
+ + +
चाहूँ माँ की हित-वेदी में
हँसते हँसते जल जाना!
कोमल पुष्पों को ठुकरा कर,
काँटों पर ही सो जाना!

आपकी कविता का कोई एक विशेष आधार नहीं है। आप की रचनायें अनेक प्रकार के भावों के साँचे में ढली हुई हैं। आपके हृदय में जो भाव उठे हैं, उन्हीं को आपने अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। यही कारण है, कि आपकी रचनाओं में हृदय-स्पर्शिता के गुण भी हैं। आपकी भाषा परिमार्जित और भाव अधिक सुलझे हुये हैं।

श्रीमती हीरा देवी चतुर्वेदी मध्य प्रान्त के प्रसिद्ध साहित्य-

सेवी और सुकवि प० दवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' की धर्म पत्नी है। आप अपने सुयोग्य पति के साथ छिंदवाडा मे रहती हैं। सहृदय और सुकवि पति के सहयोग से आपकी रचनाओं का दिनो दिन तीव्रतर विकास हो रहा है। आप, पति-पत्नी, दोनों निरन्तर साहित्य-देवता की आराधना मे सलग्न रहती है। आप की सुन्दर रचनाओ का 'नीलम' के नाम से एक सग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

निम्नाकित कविताओं मे आपका काव्य-चमत्कार देखिये:—

[१]

द्वार पर

शतदल-उपवन को अलि करता,
उन्मन गुजन से गुजार,
आई मै भी गुजित करने,
देव! तुम्हारा हृदयागार।

चन्दन-चर्चित कुकुम केशर,
सुमनों का ले मजुल हार,
धूप-दीप सब साज सजाकर,
लाइ पूजा का सम्भार।

अभिलाषा, आशा के अकुर,
हरित छिछलते-से सुकुमार।
सूख गये हा! बन्द देखकर,
रत्न खचित मन्दिर के द्वार।

छोड अकिंचन अबला पर तुम,
उपल विपुल सम भारी भार,
देव ! व्यर्थ ही निष्ठुरता का,
दिखा रहे यह कटु व्यापार।

रहे मौन यदि इसी तरह प्रभु,
तब तो मेरा मन सुकुमार,
सह न सकेगा विकट व्यथा का,
ऐसा निष्ठुर वज्र प्रहार।

अमल कमल-सी सोती बाला,
स्वर्णिम आशा ले अम्लान,
बाट जोहती बाल-भानु का,
होगा कब मृदु स्वर्ण विहान।

देर हो रही देव ! खोल दो,
अब तो ये मन्दिर के द्वार,
आओ पूजा करूँ तुम्हारी,
मुग्ध हृदय से मैं साभार।

[२]

स्मृति

शेष है अब धुंधला ध्यान !
नील-व्योम में जब शशि सुन्दर,
क्रीडा करता था खिल-खिल कर,

प्रियतम आ तव हृदय-पार्श्व मे,
प्रकट हुये छविमान । शेष है० ।।

कलित कुज था वह अति सुन्दर,
लता विहॅसती थी झुक-झुक कर,
वहीं कहीं सोते थे मधुकर,
उसी कुज मे दो मुख पर थी,
मधुर मिलन मुसुकान । शेष है० ।।

मलय-वायु भी थिरक थिरक कर,
आती जाती थी रह-रह कर,
प्रियतम-मुख से तव अस्फुट स्वर,-
निकल रहा था प्रणय-पूर्ण पर,
भग हुआ हा ध्यान । शेष है० ।।

[३]

उद्‍गार

राग की मादकता मे भूल,
अकल्पित कल्पित कर शृगार ।
प्रलय के अधः पतन को भूल,
बहाती रहती हूँ उद्‍गार ।
हृदय मे कितने ही अविकार,
पिघलते करते भग सुशान्ति ।
मृदुल स्वप्नो मे तव साकार,
नाचती आशा, लाती भ्रान्ति ।

लालसा का उद्वेलित वेग,
चपल क्रीडाओ का अभिसार।
वासना की कल्लोल मनोज्ञ,
बनी है जीवन पारावार।
अमरता नश्वरता की गोद,
दिखाती बरबस सरस दुलार।
जगत का यही बना है मोद,
यही है कवियों के उद्गार।

[४]

प्रतीक्षा

नभ के नवल नील प्रांगण मे,
कितने ही तारे आये।
झलक झलक रजनी अचल से,
झॉक-झॉक कर मुसुकाये।
उड-उड कहॉ-कहाँ से कितने,
पक्षी आये राह लगे।
कितने पथिक प्रवासी लौटे,
निज-निज गृह अनुराग पगे।
कोकिल कल-कूजन कितना ही,
सुन-सुन कर मै भूल चुकी।
बन कर आशा, दुखद निराशा,
कितना हिय मे हूल चुकी।

पलक पाँवड़े स्वागत में प्रिय,
रच-रच कर नव मन भाये।
बिछा चुकी शीतल करने को,
पथ में आँसू ढुल काये।
प्रणयी! किन्तु न लख पाई हूँ,
अब तक तेरी वह छाया,
जिसे देख कर एक बार तो
करती विस्मृत जग-माया!

कुमारी विद्या भार्गव

कुमारी विद्या भार्गव हिन्दी-साहित्य की उदीयमान कवियित्री है। आपकी सुन्दर और भाव-पूर्ण रचनाये हिन्दी की सभी सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं मे प्रकाशित होती है। आपकी रचनाओं मे आपके कवि-जीवन का एक बहुत ही सुन्दर भविष्य छिपा हुआ है। आपके हृदय मे जो कवि है, यदि उसके विकास-मार्ग में किसी प्रकार की वाधा न उपस्थित हुई, और उसे अनुकूल साधन प्राप्त होते रहे, तो कुछ ही दिनों मे हिन्दी-साहित्य मे उसका एक विशेष स्थान होगा।

इस समय आपकी कविता का शैशव काल है, तथापि आपकी रचनाये बडी ही सुन्दर और भाव-पूर्ण है। उनमे ओज है, माधुर्य है, सुकुमारता है। अनुभूति में स्वाभाविकता का अच्छा सम्मिश्रण है। वर्तमान काल के कुछ नये कवियो और नवीन कवियित्रियों की भाँति आप दुरूहता के जाल की ओर अग्रसर न होकर सरलता के साथ स्वाभाविकता ही की ओर अधिक बढ रही है। हृदय के अनुभूत भावो को ठीक-ठीक व्यक्त करने

की आप मे पर्याप्त शक्ति है। वियोगिनी नायिका की हृदय-भावना का एक स्थान पर आपने बडा ही सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण किया है। देखिये.—

अतिथि रूप मे कभी मिलेगे,
वे मेरे चिर प्रियतम।
यही सोच कर मै सखि प्रतिक्षण,
पिरो रही हूँ मोती।

कुमारी विद्या मे अनूभूति के साथ ही साथ भावो की विशालता भी है। आपकी कविता की वियोगिनी, और उसका प्रियतम, आत्मा और परमात्मा के रूप मे है। आपकी प्रत्येक रचना मे इसी भावना का आभास है। इसी भावना के आधार पर विभिन्न और नूतन कल्पनाओ के द्वारा कहीं आपने प्रेम प्रदर्शित किया है, तो कहीं वियोग के सकरुण गीत गाये है। आपकी यह पवित्र और व्यापक भावना दिनों दिन विकसित हो रही है, यह बडे हर्ष की बात है।

अपकी रचनाओ मे विषम अवस्था का चित्रण कही-कहीं बडी सुन्दरता क साथ पाया जाता है। इस चित्रण मे आप की एक नवीनता है। हँसी के साथ रुदन, और वह भी बहुत ही स्वाभाविक, और बहुत ही तथ्य-पूर्ण, कुमारी विद्या इस स्वाभाविक-चित्रण के द्वारा अपने अधिक उज्वल और सुन्दर भविष्य के साथ तीव्रतर गति से आगे बढती हुई दिखाइ देती

है। विषम अवस्था का उनका स्वभाविक और सुन्दर चित्रण देखिये:—

उनकी करुणा के सागर का,
छोटा कण भी पाती,
मै होती तन्मय, उनमे सखि,
विश्व समझता सोती!

\+ + +

समय आज भी नहीं पास है,
यही जान आकुल हूँ,
अधरो मे मुसुकान थिरकती,
पर है आँखे रोतीं।

मुसुकान के साथ रुदन का ऐसा स्वाभाविक और तथ्य पूर्ण चित्रण बहुत कम देखने को मिलता है। 'अधरों' मे मुसुकान और 'आँखे रोती' विषम अवस्था को प्रगट करने वाले इन वाक्य-खण्डों को एक स्थान पर बिठाकर कवियित्री ने अपने जिन भावों को जगाने का प्रयत्न किया है, वे उनकी वास्तविक काव्य-प्रतिभा के परिचायक हैं।

कुमारी विद्या जबलपुर के एक सुप्रसिद्ध भार्गव वंश में उत्पन्न हुई है। आपका कुटुम्ब अत्यन्त शिक्षित और उच्च श्रेणी का है। अभी आप शिक्षा पा रही है। हिन्दी साहित्य को आप से बड़ी आशा है। आप कविता ही की भाँति लेख, गद्य काव्य, और कहानी भी सुन्दर लिखती हैं।

कुमारी विद्या की निम्नाकित कविताओं मे उनका काव्य-चमत्कार देखिये:—

[१]

आँसू

मेरे आँसू सींच रहे थे,
गत जीवन की हार,
उस पर तुम आये थे करन,
यह झूठा अभिसार ।
दूर-दूर, बस दूर रहो, मत,
दिखलाओ यह प्यार,
एक साँस मे छोड चुकी हू,
यह कलुषित ससार ।
आँसू, आँसू, आँसू है,
ये शिथिल व्यथा के भार,
इनमे प्रतिपल बनता है प्रिय,
एक नया ससार ।

[२]

बन्धन

छोडना देव न मेरा हाथ,
सोचती तुम्हे साँस के साथ,
दृष्टि से दूर, सु-स्मृति के पार,
कहा खोजू, अन्तर का प्यार ।

तुम्हारी सुधि जीवन का सार,
इसी मे पाऊँगी ससार ।
भुला देना यह दुख मय बात,
कि होगा अब न अनन्त प्रभात ।

\+ \+ \+

जहा पर होगा सुख मय प्यार,
और होगा अपना ससार ।

[३]

लज्जा

जीवन की अनमोल घडी मे,
यह कैसा नूतन व्यापार ।
देख-देख तुम लजा रही हो
कर मे है फूलों का हार ।
वे करते हैं प्रणय-प्रतीक्षा,
पाने को प्रेयसि का प्यार,
देवि ! विलम्ब करो मत देखो-
मुरझा जावेगा यह हार ।
छोड़ो लज्जा, दे दो उनको,
अपना प्रथम हार, उपहार,
अरे कही यदि चले गये वे,
किसे चढाओगी फिर हार ।

[४]

हर सिगार

फूले है अलि, सुन, हर सिंगार !
है ज्योति-ज्योति पग-पग बढती,
सुरभित कर उपवन के रसाल,
आते बकुलों के झुण्ड नित्य,
देते शत दल पर मधुर ताल,
आ मुझमे पल भर नर्तन कर,
ले प्रिय की छवि से कर सिगार।
दीपक से आकुल शलभ आज,
कहता-मिटने पर मुझे नाज,
मैं जानूँ क्या सुधि-सलिल एक,
पहिराने आई मुझे ताज,
ले आज पहन मेरी कमरी,
मै पहनूँ तेरा विजय-हार,
फूले हैं अलि, सुन, हर सिगार।

श्रीमती विद्यावती 'कोकिल'

'कोकिल' जी ने हिन्दी-साहित्य के उपवन मे अपने सुमधुर गीतों के द्वारा अधिक सुख्याति प्राप्त कर ली है। अभी आपकी कविता का शैशव काल ही है, तथापि हिन्दी-जगत मे आप का अधिक नाम है। आपकी रचनाये सामयिक पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहती हैं, और आप कवि-सम्मेलनो मे भी भाग लेती है। कवि सम्मेलनो में आपकी रचनाये बडे ही सम्मान के साथ सुनी जाती हैं। आप वर्त्तमान जागरण काल की महत्त्वाकांक्षिणी नारी है। वह नारी है, जिसके हृदय मे कवि हैं, और कवि मे अपनी मौलिकता है। आपने युग परिवर्तन कारी कवियों और कवियित्रियों की धारा मे न बहकर अपनी कविता का एक नया ससार बसाया है। यद्यपि पूर्ण रूप से विकास न होने के कारण अभी वह ससार कुछ धुँधला है, किन्तु जो है, वह आप का है। उसमे एक निराली शैली है, निराला चमत्कार है।

कोकिल जी की कविता वेदना मूलक है। वे निराशा के

गीत गाती हैं। उनकी वेदना में भावना की विशालता है, निराशा मे दार्शनिकता है। वे जिस लोक का अपने काव्य मे चित्रण करती है, उसमे प्रेम तो है, किन्तु निराशा है, पीडा है। कवियित्री ही के शब्दो मे उसके प्रेम लोक को देखिये—

मै प्रेम लोक की वासी।

\+ \+ \+

पीडा उसका यौवन है,
मधुमय है कसक कहानी।

किन्तु कवियित्री की पीडा मे रुदन नही, उन्माद है, उल्लास है। कवियित्री अपने प्रेम लोक मे जिस पीडा का अनुभव करती है, वह किसी चिरसत्य के लिये है। कवियित्री उसी की अनुसन्धान मे आकुल है। पीडा ने उसे इतना पीडित कर दिया है, कि वह पीडा का अनुभव करती ही नही। इसी लिये तो वह पीडा को यौवन और मधुमय के नाम से पुकारती हैं। कोकिल जी की रचनाओ मे 'पीडा' की इसी भावना का ज़ोर है। कवियित्री कहीं कहीं इतनी भावुक बन गई है, कि कही कही उसकी काव्य-कल्पनाये उलझ-सी गई हैं। भावुकता बुरी वस्तु नहीं, किन्तु उसके साथ ही साथ अनुभूति की प्रेरणा मे शक्ति होनी चाहिये।

कोकिल जी की रचनाओ मे अनुभूति का अभाव अवश्य है, किन्तु कहीं-कही उनकी अनुभूति का अधिक विकास भी हुआ है। साधारणत. कोकिल जी मे अच्छी कवि-प्रतिभा

है। उनकी रचनायें मधुर, सुन्दर और हृदय को स्पर्श करने वाली हैं।

'कोकिल' जी आज कल प्रयाग मे रहती ह। आप के पिता बाबू शिव प्रसाद श्रीवास्तव भी साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति हैं। आपने 'कोकिल' जी को सुशिक्षिता बनाने के लिए अधिक चिन्ता की है। 'कोकिल' जी मे आज जो 'कवि' बोल रहा है वह आप ही की अभिरुचि का परिणाम है। 'कोकिल' जी नवीन युग की विचारशीला कवियित्री हैं। आप साहित्य-सेवा के साथ ही साथ राष्ट्रीय और सामाजिक कामो मे भी भाग लेती है। आप स्त्री सम्बन्धी एक पत्र भी निकालती है, जिसका सम्पादन भी आप ही करती हैं। आपके पति बाबू त्रिलोकीनाथ सिनहा भी स्वतत्र विचार के शिक्षित व्यक्ति हैं। उनके सहयोग से आपके कवि जीवन का अच्छा विकास हो रहा है। आपकी रचनाओं का सग्रह भी पुस्तक रूप मे शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

कोकिल जी की निम्नाकित कविताओ मे उनकी कवित्व-शक्ति का अच्छा विकास हुआ है:—

[१]

मैं प्रेम लोक की वासी!

मधु पीकर इन साक़ी के,
प्यालों से मै छक जाऊँ,

जग के लघु-लघु धन्धो से,
क्या कहते हो थक जाऊँ ?
अपने प्रियतम की दासी।
अपने छोटे त्रिभुवन की,
मै हू स्वच्छन्द कहानी,
पीडा उसका यौवन है,
मधु मद है कसक कहानी।
अभिलाषा प्यासी-प्यासी।
अपने उन्मद स्वप्नो मे,
मैं कभी सिहर उठती हूं,
तम के घूँघट मे स्मित भर,
मैं विद्युत की आभा-सी।
तेरी छवि की प्रतिमा-सी।

[२]

छिपा लूँ सुषमा तुम्हारी इन तृषित रीते दृगो मे !
भेदन, सहन, अरु साधना,
जीवन-निशा के क्रम न हों,
हो एक बेसुध, विवश पल,
युग कल्प ये मेरे न हों,
बस, प्रेरणा की मदिरलय पर मूक नर्तन हो पगों मे !
वेदना शर से विधे,
भरते सजल उन्माद भर,

चिर विरह पगु प्रवाह ले,
बोझिल व्यथित उर पडे दुर,
नव रग रंजित सान्ध्य नभ के विगडते धूमिल नगों में।
पुलक के सकुचित कुसुम,
मग रूँध ले सूने गगन मे,
कसक-कंचन तार बोधित,
और बढने दे न पथ मे,
झलकती गाथा तुम्हारी अचेतन गूँगे दृगों मे।

[३]

साक़ी मुझे पहचान ले!
इस हार मे उस जीत में,
नव वेदना की रीति मे,
इन प्रेमियो की भीर मे,
अपना पराया जान ले!
बशी न दे, बीणा न दे,
हाला न दे, प्याला न दे,
पद-चाप मे भर ले सुभग,
मेरे सुनहले गान ले!
यह चातको की प्यास है,
यह दीपकों की आग है,
यह चिर ज्वलन्त सुहाग है,
जीवन नही है मान ले!

[४]

आजा, आजा, ओ किरण बाल !
माँ के अंचल से मुख निकाल।
खिल उठे छूकर हृदय-सरोज
पिघल जाये तम-कारागार,
खोज लूँ प्राणों के प्रिय प्राण
चली आओ तत्काल !
इधर सूने पन का ससार,
उधर माया का मृदु अभिसार,
रहेगी सखि सूनी आज !
बाल क्या मेरी डाल !
किस अजान आलिंगन के वश,
अधर गरल मे बहा जा रहा,
आज युगों से प्रेम अकिंचन,
डाल स्वर्ण का जाल !
द्रुम-दल के चल वातायन से—
ढुलका दे मादकता भर-भर,
लूँ बटोर उर मे अधरो मे,
डाल वह जादू डाल !
खेल डाल के कम्पित पट से,
कलियो के लज्जित घूँघट से,
नयन-हीन उत्सुकता के पल,
नहीं कल्प, चिर काल !

नव किरण

वर्तमान युग संक्रान्ति का युग है। अन्यान्य क्षेत्रो की भाँति साहित्य मे भी क्रान्ति का आवेग है। नूतन विचार-धाराओ के साथ अनेक कवि और लेखक उत्पन्न हो रहे है। उनमे बहुतो का जन्म तो क्रान्ति की प्रेरणा से हुआ है, और बहुतो मे स्थायी प्राण है। क्रान्ति की प्रेरणा से उत्पन्न हुये अनेक कवि और कवियित्रियाँ बीते हुये दस वर्षो मे अपनी झलक दिखा करके ही अदृश्य हो गये। यहा उनके नाम बताने की आवश्यकता नहीं। अब वे मासिक पत्र-पत्रिकाओं या साहित्य-जगत मे बहुत कम दिखाई देते हैं। अब उनके स्थान पर नई किरणे निकली है। इन नवीन किरणो मे जिनमे स्थायित्त्व की कुछ झलक दिखलाई पडी है, उन्हीं की एक-एक कविता यहाँ पाठको के सामने भेट की जा रही है:—

गीत

वीणा के सुमधुर तारों पर तुम गाती हो कोयल रानी !

जब प्रात सहेली उठ करके,
करती है मेरा शुभ स्वागत,

मै बेसुध सी सुनती रहती,
तेरी बोली वह मस्तानी !
बीणा के सुमधुर तारों पर
तुम मुग्धा-सी दोपहरी मे,
कू-कू करती हो डाली पर,
भोली भाली मजुरियो से,
कहती हो कुछ गुप-चुप बानी !
बीणा के सुमधुर तारों पर.. . . !
फिर सान्ध्य-वधू के साथ-साथ,
तुम आजाती हो आँगन मे,
मै मस्त बनी सुनती रहती,
जब गाती हो तुम दीवानी !
बीणा के सुमधुर तारो पर !
तब आम्र बौर की ओर देख,
तुम मुसका देतीं एक बार,
फिर कू-कू कर उड जाती हो,
मै हो जाती पागल रानी !
बीणा के सुमधुर तारों पर तुम गाती हो कोयल रानी !
—श्रीमती मीना देवी

[२]

जीवन-नौका

मेरी इस जर्जर तरिणी को,
जीवन-तट पर पहुँचा देना !

सस्मृति के जल मे दिया डाल,
भावों का गूँथा नवल हार,
लहरों के भीषण अट्टहास मे,
खेल रहा वह करुण प्यार,
सागर का कर्कश सिंहनाद,
औ, लहरों का गर्जन अपार,
उर कम्पित होता बार-बार,
झंझा का यह नर्तन निहार,
खेते खेते थकी किन्तु पा सकी न कूल किनारा,
भय-विह्वल कम्पित अधरों ने नाविक तुझे पुकारा,
कर्णधार है साथ नहीं लहरो मे पथ दिखला देना !
हे नाविक-जर्जर तरिणी को जीवन-तट पर पहुंचा देना।
उठती है प्रलयकर आँधी,
बढती प्रशान्त से सिन्धु ओर,
मचली हैं यह बालक लहरे,
छू लेने दोनो पुलिन-छोर,
इस काले तम मे छिप आता,
जाने किसका नव करुण गान,
सुन-सुन है जिसको थकित शिथिल,
मेरे चिर दिन के तृषित प्राण,
लहरों की प्रतिध्वनि मे सुनती, मौन निमत्रण तेरा,
आलिंगन करने झंझा को आकुल है उर मेरा।

उस पार पहुचने को मेरे द्रुत साधन तुम बतला देना !
हे नाविक ! जर्जर तरिणी को जीवन-तट पर पहुचा देना !

—कुमारी प्रभा भटनागर

[३]

चपला

चपल चपले कौन हो तुम !
गगन-पथ पर प्रेम-मग्ना तिमिर की चादर सम्हाले,
जा रही क्या रजनि सजनी दामिनी का दीप बाले ?
या किसी अनुरागिनी के हृदय का उद्गार हो तुम !
विरह सतप्ता किसी के हृदय की सस्मृति बनी सो,
चमक उठती हो निराशा सघन मे आशा-परी-सी,
या किसी सुर सुन्दरी का मन्द सुस्मित हास हो तुम।
तमसि पथ पर श्रान्त पथिको के उरो का ताप हरने,
स्वर्ग दूती सी प्रकट होती विभा का भास करने,
रूप रम्या राधिका-सी रम रही घनश्याम मे तुम,
पीत वर्णे ! त्वरित गति से रूप की आभा दिखाती,
सुप्त जगती के हृदय को निज प्रभा से जगमगाती,
तडित क्या अलसित रगो मे शक्ति का सचार हो तुम,

—श्रीमती निरुपमा देवी

[४]

जीवन

जीवन गूढ पहेली !
सुलझाये से और उलझती—

यह अति गहन पहेली-
जान पडा सुख है जीने में,-
समझा उसे कभी मरने मे !
पता नहीं यह दुख-सुख क्या है, ?
कैसी अगम पहेली !

जीवन क्या है, एक भेद है,
समझ न कोई पाया।
सुख मे दुख, दुख मे सुख देखा,-
अद्भुत खेल खिलाया।
विश्व नियन्ता तेरी माया-
अतिशय कठिन पहेली !

—श्रीमती सुशीलाकुमारी मिश्रा

[५]

सावधान

१

जहाँ सुमन स्वच्छन्द विलसते,
यह उपवन, वह बाग नहीं।
जहाँ कमल पर अलि मँडराते,
यह वह रम्य तडाग नहीं।
यहाँ डाल से कली टूट कर,
हारो मे गुँथ जाती है,
जीवन के अज्ञात तिमिर मे,
खिल-खिल कर मुरझाती है।

२

कहीं सुमन डाली मे खिलकर,
तप-साधन सा करते है,
माली गण चचल भौरो से,
मन ही मन मे डरते हैं।
उठती हैं लहरे सागर मे,
दब-दब कर रह जाती है,
विवश हृदय मे उन्मादों की,
मूक व्यथा उपजाती है।

३

और कही चचल चित भौरे,
मधुमय जाल बिछाते है,
भावुकता से भरे सुमन के,
सरल हृदय फँस जाते है।
लोक-लाज के खुलने का जब,
कठिन कुअवसर-आता है,
वचक कायर क्रूर भ्रमर उस,
दिन धोखा दे जाता है।

४

दुखमय आँसू मे जीवन का,
सुख-समूह बह जाता है,
रुसवाई दुनिया मे दिल पर,

अमिट दाग रह जाता है।
ऐ! वन के स्वाधीन सुमन,
इस बीती पर विचार करना,
किसी भ्रमर के प्रेम-पन्थ पर,
फूँक-फूँक कर पग धरना।

—श्रीमती विष्णुकान्ता देवी अवस्थी

[६]

कवि! मधुमय जीवन तेरा,
आहों मे तेरी लय है,
बिकलित साँसों मे उलझन,
जीवन मे कितनी सुषमा,
स्पन्दन मे रस मय मधुवन,
कवि! मधुमय जीवन तेरा!
किरणों मे स्मित को देखा,
लहरों मे मधुमय कम्पन,
ऊषा मे सुख को ढूँढा,
तारो मे पाई सिहरन!
कवि! मधुमय जीवन तेरा!
सुख-दुख की गति जीवन मे,
बाणी मे जागृति विस्मृति,
जागृत स्वप्निल नयनों मे,

कितने मृदु चित्रों की गति !
कवि ! मधुमय जीवन तेरा !

—श्रीमती सुनन्दा देवी

[७]

क्यों सहसा यों उठता पुकार,
रे व्यथित हृदय तू प्यार, प्यार ।
पा मधुर मींड हृद्-वीणा के,
झंकरित हुए यदि सभी तार,
तो सुना न अखिल विश्व को तू,
मादक स्वर लहरी बार बार ।
अपने श्रवणों की सीपी में,
यह राग-स्वाति-सीकर भरकर,
रक्षित रख इसे कृपण-धन सा,
तू खोल न इसको जीवन भर।
क्यों सहसा यों उठता पुकार,
रे व्यथित हृदय तू प्यार, प्यार !
तू अपना प्रेम-पाठ पढ ले,
पुलकित तन हो, चिर मौन साध,
छिछला बन कर मत बहक देख,
यह प्रेम-जलधि है अति अगाध ।
सीरी साँसे भर-भरकर, यों,
भडका न प्रेम की बुझी आग,

हो चुकी—भस्म अभिलाषाये,
उर मे केवल रह गया दाग।
क्यों सहसा यों उठता पुकार,
रे व्यथित हृदय तू प्यार, प्यार।

—श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

[८]

समर्पण

उन अलक्ष्य चरणों पर अर्पित,
है यह मृदु उर का उपहार,
उस नीरव मन्दिर देहली पर,
बाला प्रेम-दीप सुकुमार।
मेरे चिर आकुल नयनों मे,
बसता करुणा का संसार,
मेरे छोटे से जीवन ने,
राशि-राशि बरसाया प्यार।
कैसे तुम्हे बताऊँ निमर्म,
मेरा है अनन्त अभिसार,
मेरे प्राणो ने पाया पर,
तुमसे पीडा का आभार।

—कुमारी शान्ति गुप्ता

[९]

अन्तर्वेदना

जीवन के उस प्रथम प्रहर मे,
सन्ध्या सा किसको देखा ?
बीत गये युग किन्तु तिमिर मे,
अंकित वह स्वर्णिम रेखा।
विस्मृति की सिकता मे किसका,
अमिट चिन्ह अंकित प्यारा !
धो-धो जिसे मिटा करती सखि,
चाँदी-सी दृग जल धारा !
वर्तमान का अन्त किन्तु,
मेरा अतीत है अमर अनन्त,
मेरे जीवन के पतझर पर,
लुट-लुट जाता सरस बसन्त !

—श्रीमती विद्यावती "सुधा"

[१०]

नैराश्य

बनाया यह मुरझाया हार,
बेध कर अपना हृदय-प्रवाल,
पलक अपने मे गिन दिन-रात,
बिताये कितने युग बेहाल !
तड़ित मिस घन करते उपहास,

उलझता आता निठुर समीर,
वक्र शशि मे है कुटिल कटाक्ष,
तारको मे चिर दुख का नीर।
न आये देव, न आये देव,
हुआ सुख का दुख का अवसान,
निराशा का, नभ सा गभीर,
पहिन बैठा है उर परिधान।

—कुमारी वागीशा देवी

[११]

आकांक्षा

प्रथम मिलन की मधु रजनी में,
हृदय-हृदय का नूतन परिचय,
रवि-सरसिज सम प्रीति-बद्ध हो,
स्नेह-दीप-सा हो ज्योतिर्मय।
सजल लोचनों के मधु जल से,
मिलन सरस हो जावे। अतिशय,
भाव सरित की चचल लहरे,
क्या न बनेगी प्रिय की ध्वनिमय!
उर मे एक एक हो स्पन्दन,
प्राणो मे हो प्राणों की लय,
युगल-हृदय की बशी-ध्वनि मे,
गुजित हो यह राग प्राण मय।

स्नेह-उर्मि यह उमड पडी प्रिय !
भिन्न शरीर अभिन्न हृदय हो,
घुल-मिल कर यह द्वैत करारे,
बहती जाती निःसशय हो।

—श्रीमती स्वर्णकीर्ति देवी

[१२]

जाग !

नवयुवक-हृदय उठ जाग ! जाग !!
हे भारत भू के भाग जाग,
असहायों के अनुराग जाग,
नवयुवक-हृदय उठ जाग ! जाग !!
मानवता के अरमान जाग,
कर्मण्यों के अभिमान जाग,
नवयुवक-हृदय उठ जाग ! जाग !!
मानी वीरों की आन जाग,
रजपूतो वाली शान जाग,
नवयुवक-हृदय उठ जाग ! जाग !!
गत बल-वैभव की याद जाग,
अबलाओं की फरियाद जाग,
नवयुवक-हृदय उठ जाग, जाग !!

—कुमारी शान्ति देवी भार्गव

॥ इति शुभम् ॥

हिन्दी की कहानी लेखिकाएँ और उनकी कहानियां

हिन्दी मे अपने ढङ्ग की यह एक ही पुस्तक है। इस मे पाठिकाओं को सभी-समुदाय के मानसिक विकास और मनो विज्ञान का पूर्ण चित्र मिल सकेगा। इसके अतिरिक्त यह ज्ञान भी हो सकेगा कि हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में स्त्रियां कितना भाग ले रही है। पुस्तक का सपादन किया है हिन्दी के यशस्वी कवि और उपन्यासकार प० गिरिजादत्त शुक्ल "गिरीश बी० ए० ने। केवल इस सकेत से ही पुस्तक की उपादेयता विदित हो सकती है। सपादक ने आरभ मे गाथा-साहित्य का सक्षिप्त इतिहास भी दे दिया है। समष्टि रूप से पुस्तक अपने विषय की एक ही पुस्नक है। मूल्य २॥)

नवयुवतियों को क्या जानना चाहिए—

ले० श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर

नवयुवतियो के जीवन मे नित्य काम मे आने वाली अनेक प्रकार की बातों की जानकारी के लिए यह सर्वोत्तम पुस्तक है। नवयुवतियों के जानने क योग्य कोई ऐसी बात नहीं है जो इसमे न दे दी गयी हो। प्रत्येक गृहस्थ मे इस पुस्तक का होना आवश्यक है। पुस्तक मे वर्णित विषयों की सूची सक्षेप मे यों है—स्त्री शिक्षा की ज़रूरत, अच्छी बातों की शिक्षा, काम-काज, व्यवहार-बर्त्ताव कपडे और गहने, गृहस्थी की बातें शारीरिक सौन्दर्य्य और स्वास्थ्य, सीना पिरोना, बुनना,

कन्या प्रबोधनी प्रथम भाग—यह पुस्तक ६ वर्ष से लगा कर १० या १२ साल तक की लडकियों के लिये तैयार की गई है। इस पुस्तक मे उन्हीं के लायक सरल सुबोध और रोचक भाषा भी रक्खी गई है। सबेरे उठना, सफाई, अच्छी सीख, बहन, प्रेम, पत्र लिखना घर के काम, बडे घरों की लडकियाँ बीमार क्यो होती है, चित्र कारी, सिलाई, शिक्षा, धब्बे छुडाना, हँसी खेल, माता का उपदेश, गुड़िया का पाठ, छुट्टी का दिन आदि कितने ही विषयो पर शिक्षाप्रद लेख दिये गये हैं। मूल्य केवल ।=) छै आना।

कन्या प्रबोधनी द्वितीय भाग—यह दूसरा भाग दस बरस से लगा कर उन लडकियों तक के लिये है जो नई बहू बनी हैं या बनने वाली है। इस भाग मे पहले भाग से कुछ कठिन, पाठ हैं। तुम स्वस्थ और सुन्दर कैसे बनोगी, खेलना, कूदना जरूरी है, शुद्ध वायु मे घूमना, पत्र लिखना घर कैसा होना चाहिये, लडकियों के गुण और सच्चे गहने, सखी सहेली, सेवा धर्म, आदि विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। मूल्य अजिल्द ।।।) सजिल्द का १)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का एक ही पता—

प्रमोद-पुस्तक-माला, कटरा, प्रयाग।